खंड 3
अवधारणाएँ

खंड 3 अवधारणाएँ

खंड 3 में चार इकाइयाँ इस प्रकार है– लोकतंत्र, जेडर, नागकिता और नागरिक समाज। **इकाई 7**, लोकतंत्र के विचार एवं इसके विभिन्न प्रकारों जैसे कि शास्त्रीय, कुलीनवादी, लोकप्रिय तथा ई-लोकतंत्र के बारे में सामान्य समझ देती है। **इकाई 8**, पितृसत्ता एवं उसके सिद्धांतों, जेंडर मुख्यधारा तथा जेंडर और राजनीति के बीच संबंधों जैसी विषय-वस्तुओं के माध्यम् से जेंडर की अवधारणा पर चर्चा करती है। **इकाई 9**, नागरिकता, इसका एक अवधारणा के रूप में विकास, विभिन्न सिद्धांतों जैसे उदारवाद, गणतंत्रवाद, नारीवाद आदि एवं वैश्विक नागरिकता के विचारों पर प्रकाश डालती है। **इकाई 10**, नागरिक समाज एवं राज्य की संकल्पना तथा साथ ही उनके संबंधों के बारे में भी वर्णन करती है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 7 लोकतंत्र*

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 परिचय : लोकतंत्र का अर्थ

7.2 प्रक्रियात्मक/न्यूनवादी और वास्तविक लोकतंत्र/अधिकतावादी आयाम

7.3 लोकतंत्र के प्रकार

- 7.3.1 शास्त्रीय लोकतंत्र
- 7.3.2 कुलीनवादी सिद्धांत
- 7.3.3 बहुलवादी सिद्धांत
- 7.3.4 सहभागी लोकतंत्र
- 7.3.5 विमर्शी लोकतंत्र
- 7.3.6 जनवादी लोकतंत्र लोकतंत्र
- 7.3.7 समाजवादी लोकतंत्र
- 7.3.8 ई-लोकतंत्र

7.4 भारतीय लोकतंत्र पर एक नजर

7.5 सारांश

7.6 सन्दर्भ

7.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

7.0 उद्देश्य

इस इकाई के अंतर्गत आप शासन की एक प्रणाली के रूप में लोकतंत्र के सन्दर्भ में समझ विकसित करेंगे। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात्, आप इस योग्य होंगे कि :

- लोकतंत्र के अर्थ और विकास को स्पष्ट कर सकें;
- लोकतंत्र के विभिन्न प्रकारों को समझ सकें;
- भारतीय लोकतंत्र की विशेषताओं को समझ सकें; तथा
- भारतीय लोकतंत्र के समक्ष चुनौतियों को जान सकेंगे।

7.1 परिचय : लोकतंत्र का अर्थ

लोकतंत्र का उदय यूनान में हुआ, क्योंकि ऐसा माना जाता है कि 500 ई.पू. के आस-पास यूनान में पहली लोकतान्त्रिक सरकार बनी थी। 'डेमोक्रेसी' शब्द का उद्भव यूनानी शब्द 'डेमोक्राटिया' (Demokratia) से हुआ है। जो कि दो यूनानी शब्दों 'demos' अर्थात् 'लोग' और 'kratos' अर्थात् 'शक्ति' से मिलकर बना है। इस प्रकार लोकतंत्र का मतलब 'लोगों के द्वारा शासन' होता है जो कि सरकार को सच्चे अर्थों में वैद्यानिकता प्रदान करता है। इसी कारण हम आज लोकतंत्र के विभिन्न स्वरूप देखते हैं यथा–उत्तर कोरिया में अधिनायकवादी लोकतंत्र, पाकिस्तान और तुर्की में इस्लामिक लोकतंत्र, अमेरिका में अध्यक्षीय लोकतंत्र और भारत में संसदात्मक लोकतंत्र। लोकतंत्र से जुड़े हुए दो मुद्दे

*डॉ. राज कुमार शर्मा, अकादमिक एसोसिएट, राजनीति विज्ञान विभाग, इग्नू

स्वतंत्रता और समानता में एक अन्तर्निहित तनाव देखने को मिलता है जिससे सभी प्रकार के लोकतंत्रों को जूझना पड़ता है। व्यक्तिगत स्वतंत्रता को प्रसारित करने पर समानता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है और इसी प्रकार समानता को प्रसारित करने पर व्यक्तिगत स्वतंत्रता को हानि पहुंचती है। एक अन्य मुद्दा अल्पसंख्यक हितों का है, जैसा कि मान्यता है कि लोकतंत्र अल्पसंख्यक हितों से समझौता करके बहुसंख्यक हितों पर आधारित शासन प्रणाली है यह प्रवृति वहाँ कम देखने को मिलेगी जहाँ पर लोकतंत्र के अंतर्गत मतदाता अधिक परिपक्व और शिक्षित हैं। स्वतंत्र मीडिया भी इसमें मदद कर सकता है, क्योंकि इसके माध्यम से बिना किसी का पक्ष लिए स्वतंत्र और संतुलित लिया जा सकता है। एक जानकार और जागरूक मतदाता और स्वतंत्र मीडिया सरकार के उत्तरदायित्व को सुनिश्चित करते हैं; जो कि लोकतंत्र का मूल तत्व है।

इसके बावजूद, अनेक ऐसे कारण हैं कि अन्य प्रकार की शासन-प्रणालियों की अपेक्षा लोकतंत्र को बेहतर माना जाता है। मिल ने अपनी पुस्तक *'कंसीडरेशन ऑफ रिप्रेजेन्टेटिव गवर्नमेंट'* 1861 में लोकतान्त्रिक निर्णय-निर्माण के तीन लाभ बताये हैं। पहला, रणनीतिक तौर पर लोकतंत्र नीति-निर्माताओं को बाध्य करता है कि वे लोगों के अधिकारों, मतों और हितों के प्रति उत्तरदायी बने रहें, जैसा कि कुलीनतंत्र या अधिकनायतंत्र में नहीं होता है। दूसरा, ज्ञानमीमांसा के तौर पर लोकतंत्र में विभिन्न प्रकार के दृष्टिकोणों कि उपस्थिति होती है, जिससे नीति-निर्माताओं को उनमें से सर्वोत्तम को चुनने का मौका मिलता है। तीसरा, लोकतंत्र तार्किकता, स्वायतता और स्वतंत्रता जैसे विचारों को समाहित कर नागरिकों के चरित्र निर्माण में सहयोग प्रदान करता है। यह लोकमत का दबाव बनाता है और राजनेताओं द्वारा सत्ता में बने रहने के लिए इसे नजरअंदाज करना संभव नहीं हो पाता। इस सन्दर्भ में नोबेल पुरस्कार विजेता अमर्त्य सेन ने लोकतंत्र और अकाल के बीच सम्बन्ध को प्रस्तुत किया है, उनका तर्क है कि एक कार्यरत लोकतंत्र में कभी अकाल नहीं आया है। क्योंकि लोकतंत्र में नेता लोगों के प्रति उत्तरदायी होते हैं और वे लोगों की मूलभूत आवश्यकताओं को अनदेखा नहीं कर सकते। आधुनिक लोकतंत्र का जन्म ब्रिटेन और फ्रांस में हुआ और वहीं से अन्य देशों में इसका प्रसार हुआ। लोकतंत्र के विस्तार में अनेक कारण उत्तरदायी हैं – भ्रष्टाचार और अक्षमता, शक्तियों का दुरूपयोग, उत्तरदायित्व की अनुपस्थिति और दैवीय शक्तियों की संकल्पना पर आधारित राजाओं का अन्यायपूर्ण शासन।

व्यापक सन्दर्भ में, लोकतंत्र राज्य और सरकार की एक शासन-प्रणाली ही नहीं समाज की एक अवस्था भी है। एक लोकतान्त्रिक समाज वह है जहाँ सामाजिक और आर्थिक समानता देखने को मिलती है, जबकि एक लोकतान्त्रिक राज्य वह है जिसमें नागरिकों को सुलभ और न्यायपूर्ण राजनीतिक प्रक्रिया में भाग लेने का अवसर प्राप्त हो। लोकतंत्र के अर्थ को समझने के लिए कुछ शब्द बार-बार प्रयोग किये जाते हैं, जो निम्न हैं :

- गरीब और हीनतम लोगों के द्वारा शासन।
- समान अवसर पर आधारित समाज और श्रेणी तथा विशेषाधिकार के स्थान पर व्यक्तिगत गुणों पर आधारित समाज।
- सामाजिक असमानता को कम करने हेतु कल्याणकार्य और पुनर्वितरण।
- बहुमत के शासन पर आधारित निर्णय-निर्माण।
- बहुमत के शासन कि बाधाओं को हटाते हुए अल्पसंख्यक-अधिकारों की रक्षा।
- लोकप्रिय मतदान हेतु सार्वजनिक-कार्यालयों को मतदान के माध्यम से भरा जाना।

व्यापक सन्दर्भ में, लोकतंत्र के अतर्गत बहुत सी विशेषताओं को सम्मिलित किया जा सकता है। लिखित संविधान, विधि का शासन, मानव अधिकार, स्वतंत्र पत्रकारिता और न्यायालय कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका के बीच शक्तियों का विभाजन इत्यादि को लोकतंत्र के आधारभूत लक्षणों के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। अपने प्रारंभिक स्वरूप में लोकतंत्र का विचार यूनान से आया, जो कि समावेशी स्वरूप में नहीं था। लोकतंत्र का यूनानी मॉडल महिलाओं, दासों और प्रवासियों को समाहित नहीं करता, इस अर्थ में यह खुद को अलोकतांत्रिक बना देता है। आधुनिक लोकतन्त्रों में भी इस तरह के तत्व विद्यमान रहे हैं, जैसे कि फ्रांस, ब्रिटेन, अमेरिका आदि में भी कुछ वर्ग को मतदान से वंचित रखा गया था, जबकि मताधिकार सम्पत्तिशाली लोगों को दिया गया था। 1789 की फ्रांसीसी क्रांति में लोकप्रिय संप्रभुता के साथ-साथ स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व की बात की गयी। यद्यपि उस समय महिलाओं को मतदान का अधिकार नहीं मिला और फ्रांस में 1944 में जाकर सार्वजनीन व्यस्क मताधिकार लागू किया गया। ब्रिटेन में महिलाओं को मतदान का अधिकार 1928 में मिला, जबकि अमेरिका में 1920 में। इसके बावजूद अमेरिका में रंगों के आधार पर भेदभाव विद्यमान रहा और 1965 में जाकर अफ्रीकी-अमेरिकी पुरुषों और महिलाओं को मतदान का अधिकार मिला। इस सन्दर्भ में पश्चिमी लोकतन्त्रों से तुलना किया जाए तो भारत अधिक प्रगतिशील रहा है क्योंकि भारत में सार्वजनीन व्यस्क मताधिकार 1950 अर्थात् संविधान लागू होने की तिथि से ही प्रभाव में है। इस प्रकार भारत दुनिया में शायद पहला ऐसा लोकतान्त्रिक देश है जहाँ संविधान लागू होने की प्रारंभिक तिथि से ही सार्वजनीन व्यस्क मताधिकार लागू है। सऊदी अरब महिलाओं को मताधिकार देने वाला नवीनतम देश है, जहाँ 2015 के नगर-पंचायत के चुनावों में प्रथम बार महिलाओं ने मताधिकार का प्रयोग किया।

मोटे तौर पर, लोगों के मताधिकार के शासन करने के आधार पर लोकतंत्र को प्रत्यक्ष और प्रतिनिधि लोकतंत्र के रूप में विभाजित किया जा सकता है। प्रत्यक्ष लोकतंत्र शासन में प्रत्यक्ष और अमध्यवर्ती नागरिक सहभागिता पर आधारित होता है सभी व्यस्क नागरिक निर्णय निर्माण प्रक्रिया में यह सुनिश्चित करने के लिए भाग लेते हैं कि सभी दृष्टिकोणों पर चर्चा हो चुकी है और सर्वोत्तर संभव निर्णय लिया गया है। प्रत्यक्ष लोकतंत्र शासक और शासित तथा राज्य और नागरिक समाज के बीच के अंतर को मिटा देता है। प्राचीन यूनानी नगर राज्य का स्वरूप प्रत्यक्ष लोकतंत्र का एक उदाहरण है। समकालीन समय में प्रत्यक्ष लोकतंत्र स्विसकैंटन में पाया जा सकता है। प्रत्यक्ष लोकतंत्र अधिक वैद्यता सुनिश्चित करता है क्योंकि लोग ऐसे निर्णयों का पालन करना अधिक पसंद करते हैं जो उन्हीं के द्वारा लिया गया है। आधुनिक राज्य की बड़ी जनसंख्या व भौगोलिक स्थिति की वजह से प्रत्यक्ष लोकतंत्र की संकल्पना कठिन हो जाती है। इस समस्या के समाधान के रूप में प्रतिनिधि लोकतंत्र का विकास हुआ, जो कि सर्वप्रथम 18वीं शताब्दी में उत्तरी यूरोप में प्रयोग में आया। प्रतिनिधि लोकतंत्र, लोकतंत्र का एक सीमित और अप्रत्यक्ष स्वरूप है। यह सीमित है क्योंकि मतदान के माध्यम से नीति निर्माण में लोकप्रिय सहभागिता अत्यंत कम होती है, जबकि यह अप्रत्यक्ष इसलिए है कि लोग अपनी शक्तियों का प्रयोग प्रत्यक्ष रूप से नहीं करते बल्कि अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों के माध्यम से करते हैं। दुनिया में अध्यक्षात्मक और संसदात्मक लोकतंत्र के रूप में दो मुख्य प्रकार के प्रतिनिधि लोकतंत्र पाए जाते हैं। अध्यक्षात्मक लोकतंत्र की अपेक्षा संसदात्मक लोकतंत्र अधिक प्रतिनिधित्यात्मक होता है, लेकिन साथ ही कम स्थिर होता है।

बोध प्रश्न 1

नोटः अ) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये गये स्थान का उपयोग करें।

ब) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलायें।

1) लोकतंत्र से आप क्या समझते हैं? शासन की अन्य पद्धतियों की अपेक्षा लोकतंत्र की क्या विशेषताएं हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2) प्रतिनिधि लोकतंत्र से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

7.2 प्रक्रियात्मक/न्यूनतम और वास्तविक/अधिकतम आयाम

लोकतंत्र को दो भिन्न आयामों से ठीक तरीके से समझा जा सकता है– प्रक्रियात्मक (न्यूनवादी) और वास्तविक (अधिकतावादी)। प्रक्रियात्मक आयाम अपना ध्यान केवल लोकतंत्र प्राप्ति की प्रक्रिया अथवा साधनों पर केन्द्रित करता है। इसका तर्क है कि सार्वजनीन व्यस्क मताधिकार पर आधारित नियमित प्रतिस्पर्धी चुनाव और बहुत राजनीतिक सहभागिता के माध्यम से लोकतान्त्रिक रूप से चयनित सरकार बनती है। जोसफ स्चुम्पेटर ने 1942 में अपनी पुस्तक *'कैपिटलिज्म, सोशलिज्म और डेमोक्रेसी'* में कहा है कि लोकतंत्र राजनीतिक निर्णयों तक पहुँचने का एक संस्थात्मक व्यवस्थापन है जिसमें व्यक्ति प्रतिस्पर्धात्मक संघर्ष के माध्यम से लोगों के मत प्राप्त कर निर्णय करने की शक्ति प्राप्त करता है। हंटिगटन ने भी इसी तरह के विचारों को प्रतिबिंबित किया है, ''लोकतंत्र की केंद्रीय प्रक्रिया उन लोगों द्वारा प्रतिस्पर्धी चुनाव के माध्यम से नेताओं का चयन है, जो शासित होते हैं।'' हालांकि, न्यूनवादी विचार में चुनावी भागीदारी के अलावा लोगों को निष्क्रिय माना जाता है और इस प्रकार से वे अपने प्रतिनिधियों द्वारा शासित होते हैं। इस दृष्टिकोण का जोर इस बात पर है कि कैसे एक लोकतांत्रिक सरकार का चुनाव करें, नाकि स्वतंत्रता और आजादी पर । व्यवस्था में 'नियंत्रण और संतुलन' के अभाव में निर्वाचित नेता अपने लाभ के लिए प्रक्रियाओं और शक्तियों में हेर-फेर कर अधिनायकवादी बन सकते हैं। एक लोकतान्त्रिक व्यवस्था में ऐसी सरकार जो लोगों की शक्ति अपने पास रखती है जो आधारभूत अधिकार अपने पास रखती है, वह कुलीन लोगों के लिए कार्य कर सकती है। इस तरह की घटनाओं का अस्तित्व 1980 और 1990 के बीच अर्जेंटीना और ब्राजील में देखने को मिला। यद्यपि वहाँ समय-समय पर चुनाव होते रहते हैं परन्तु शक्तियों के एक व्यक्ति के हाथों में केन्द्रित होने के कारण मध्य एशियाई देशों की सरकारों को भी प्रक्रियात्मक लोकतन्त्रों की श्रेणी में रखा जा सकता है। टेरी कार्ल का कहना है कि एक ऐसी परिस्थिति जहाँ चुनावी प्रक्रिया को

लोकतंत्र के अन्य आयामों से प्राथमिकता दी जाती हो, न्यूनवादी दृष्टिकोण 'चुनाववाद में दोष' का कारण हो सकता है। फरीद जकारिया इसे 'अनुदारवादी लोकतंत्र' कहते हैं क्योंकि ऐसे मामलों में सरकारें लोकतान्त्रिक पद्धति से निर्वाचित होती हैं लेकिन संविधान में वर्णित उनकी शक्तियों की सीमाओं का नजरअंदाज करते हैं और अपने नागरिकों के मूलभूत अधिकारों और स्वतंत्रताओं से वंचित रखते हैं।

वास्तविक लोकतंत्र प्रक्रियात्मक लोकतंत्र की कमी को दूर करने का प्रयास करता है, इसका मानना है कि सामाजिक ओर आर्थिक असमानता लोकतान्त्रिक प्रक्रिया में जनसहभागिता में बाधा हो सकती है। शासन करने के बजाय, वास्तविक अर्थों में यह अपना ध्यान सामाजिक समानता जैसे परिणामों पर केन्द्रित करता है। एक अर्थ में, यह सीमित लोगों के हित के बजाय सामान्य-हित की बात करता है। पुनर्वितरणात्मक न्याय के माध्यम से वांछित वर्ग यथा-महिलाओं और गरीबों के अधिकारों की रक्षा की जा सकती है और ऐसी परिस्थिति का निर्माण राज्य द्वारा हस्तक्षेप के माध्यम से ऐसे वर्गों की राजनीतिक प्रक्रिया में भागीदारी सुनिश्चित करके की जा सकती है। विभिन्न राजनीतिक विज्ञानी यथा जॉन लॉक, जीन जैक्स रूसो, इमैनुअल कांट, जॉन स्टुअर्ट मिल ने इस दृष्टिकोण के विकास में अपना योगदान दिया है। स्कम्पेटर का विश्वास है कि लोकतंत्र की ऐसी संकल्पना जो समानता के महत्वकांक्षी स्वरूप को अपना लक्ष्य मानती है खतरनाक है। इसके विपरित रूसो का तर्क है कि लोकतंत्र का औपचारिक प्रकार दास-प्रथा के समान है और केवल समतावादी लोकतंत्र ही राजनीतिक वैधता को प्राप्त है।

बोध प्रश्न 2

नोटः अ) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये गये स्थान का उपयोग करें।

ब) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलायें।

1) प्रक्रियात्मक लोकतंत्र और वास्तविक लोकतंत्र में अंतर स्पष्ट करें।

.....

.....

.....

.....

.....

7.3 लोकतंत्र के प्रकार

7.3.1 शास्त्रीय लोकतंत्र

शास्त्रीय लोकतंत्र का आधार प्राचीन यूनानी नगर-राज्यों में विकसित एक ऐसी शासन प्रणाली से था जो कि सम से बड़े और शक्तिशाली नगर-राज्यों में जनसमूहों की बैठक पर आधारित था। इस स्वरूप का महत्वपूर्ण स्वरूप यह था कि लोग राजनीतिक रूप से अत्यधिक सक्रिय थे। सभा की बैठकों के अतिरिक्त नागरिक निर्णय-निर्माण और सार्वजनिक कार्यालयों में अपना योगदान देते थे। हालाँकि इसमें महिलाओं, दासों और प्रवासियों को नागरिकता से वंचित रखा गया था। दासों और महिलाओं के काम करने की वजह से एथेंसवासी पुरुषों को राजनीतिक मामलों में भाग लेने का मौका मिलता था। इस वजह से यह दूर्भाग्यपूर्ण और अलोकतांत्रिक था कि उन्हें नागरिकता से बाहर रखा गया। प्लेटो ने अपनी पुस्तक 'द रिपब्लिक' में एथेंस के लोकतंत्र की यह कहकर आलोचना की कि लोग

स्वयं पर शासन करने के लिए बौद्धिक रूप से योग्य नहीं थे, उन्हें दार्शनिक राजा और अभिभावकों से शासित होने की आवश्यकता है क्योंकि यही उनके अनुकूल है।

7.3.2 कुलीनवादी सिद्धांत

इस सिद्धांत का प्रतिपादन विल्फ्रेडो पैरेटो, जी. मोस्का, रॉवर्ट मिशेल्स और जोसेफ शुम्पीटर ने किया था। इस सिद्धांत का विकास समाजशास्त्र के अध्ययन क्षेत्र में हुआ था लेकिन इसका महत्वपूर्ण निहितार्थ राजनीति शास्त्र के साथ भी है। मिशेल्स ने 'अल्पतंत्र का लौह नियम' दिया, जिसके अंतर्गत उन्होंने तर्क दिया कि अपने वास्तविक लक्ष्य से इतर प्रत्येक संगठन अल्पतंत्र के रूप में सीमित होकर 'कुछ लोगों के शासन' के रूप में परिवर्तित हो जाता है। मोस्का का कहना है कि लोगों को दो श्रेणियों शासक और शासित के रूप में विभाजित किया जा सकता है। चाहे कोई भी शासन-प्रणाली हो अधिकांश शक्ति, प्रतिष्ठा असैर सपंत्ति शासक वर्ग के हाथों में होती है। शासक के पास यदि नेतृत्व का गुण नहीं होता है तो वह कुलीनों का अनुसरण करने लगता है। यह सिद्धांत लोकतंत्र के समक्ष एक गंभीर प्रश्न खड़ा करता है और यह सलाह देता है कि यदि कुलीन शक्ति और संपत्ति और निर्णय-निर्माण का नियंत्रण करेंगे तो लोकतंत्र व्यवहारिक धरातल पर नहीं आ सकता।

7.3.3 बहुलवादी सिद्धांत

कुलीन सिद्धांत के विपरीत बहुलवादी विश्वास करते हैं कि नीति-निर्माण एक विकेद्रीकृत प्रक्रिया है, जहाँ विभिन्न समूह अपने विचारों को स्वीकृति दिलाने के लिए मोल-तोल करते हैं। यह विभिन्न समूहों के बीच आपसी बातचीत का परिणाम होता है ना कि कुछ कुलीनों के। इस सिद्धांत के प्रतिपादकों में कार्ल मैंनहाईम, रेमंड आरों, रॉबर्ट, डह्ल, चार्ल्स लिंडब्लोम हैं। डह्ल और लिंडब्लोम ने 'बहुतंत्र' की संकल्पना दी, जिसका मतलब था सभी नागरिकों के शासन के बजाए बहुत से लोगों का शासन। संक्षेप में, वे कहते हैं कि यद्यपि राजनीतिक रूप से विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग और आर्थिक रूप से शक्तिशाली वर्ग सामान्य नागरिक की अपेक्षा अधिक प्रभाव रखते हैं, फिर भी कोई भी संभ्रांत व्यक्ति राजनीतिक-प्रक्रिया में सदैव हावी रहने योग्य नहीं होता है।

7.3.4 सहभागी लोकतंत्र

इस सन्दर्भ में सभी लोकतंत्र सहभागी होते हैं कि वे लोकप्रिय सहमति पर आधारित होते हैं, जोकि इसके सहभागी प्रकृति को सुनिश्चित करता है। हालाँकि लोकतंत्र में यह संभावना रहती है कि लोगों की भूमिका मतदान तक ही समिति रह जाए। ऐसे जटिल लोकतंत्रों में निर्वाचित प्रतिनिधि और नागरिकों की बीच दूरी बढ़ जाती है जहाँ लोग जाति, वर्ग, धर्म और क्षेत्र आदि आधारों पर विभाजित होते हैं। कुलीनतंत्रीय और बहुलवादी सिद्धांत के विपरीत सहभागी लोकतंत्र सामान्य-हित को प्रोत्साहित करने के लिए नीति-निर्माण में नागरिकों की सहभागिता का समर्थन करता है, साथ ही यह सरकार की नागरितों के प्रति अधिक जिम्मेदार बनाता है। रूसो, जे.एस.मिल और सी.बी.मैकफर्सन ने सहभादी लोकतंत्र के विचार को समर्थन दिया। रूसो का कहना है कि लोकप्रिय संप्रभूता लोगों के हाथों में स्थित सर्वाधिक, महत्वपूर्ण शक्ति है, जोकि उनका अहस्तान्तरणीय अधिकार है और सभी नागरिकों को राज्य के मामले में शामिल होना चाहिए। मिल का कहना है कि जो सरकार अपने नागरिकों के नैतिक, बौद्धिक और सक्रिय गुणों को प्रोत्साहित करे, वह सबसे अच्छी सरकार होती है।

7.3.5 विमर्शी लोकतंत्र

विमर्शी लोकतंत्र का तर्क है कि राजनीतिक-निर्णय नागरिकों के बीच न्यायपूर्ण और तर्कसंगत विमर्श के माध्यम से होना चाहिए। सर्वहित की प्राप्ति के लिए सर्वोत्तम की प्राप्ति हो सके। जॉन राल्स और जे. हैबरमास ने विमर्शी लोकतंत्र के पक्ष में तर्क दिया है। राल्स का मत है कि एक न्यायपूर्ण राजनीतिक समाज की प्राप्ति के लिए विवेक के माध्यम से हम स्वार्थ पर नियंत्रण पा सकते हैं। हैबरमास का मत है कि न्यायपूर्ण प्रक्रिया और स्पष्ट संचार के माध्यम से निर्णयों पर सहमति बनाई जा सकती है तथा वैद्यता प्राप्त किया जा सकता है।

7.3.6 जनवादी लोकतंत्र

जनवादी लोकतंत्र का आशय लोकतंत्र के उस मॉडल से है जिसका निर्माण साम्यवादी परंपरा के अंतर्गत किया गया है। मार्क्सवादियों की अभिरुचि सामाजिक समानता में रही है इस कारण लोकतंत्र का उनका अपना मॉडल है जोकि पश्चिमी मॉडल के विरुद्ध है; क्योंकि पश्चिमी मॉडल के अंतर्गत राजनीतिक समानता स्थापित करने की बात की जाती है। जनवादी लोकतंत्र की स्थापना सर्वहारा-क्रांति के बाद हुई जब सर्वहारा-वर्ग ने राजनीतिक-निर्णयों में अपनी भूमिका निभाना शुरू कर दिया। कार्ल मार्क्स ने सर्वहारा के शासन की बात की, वहीं लेनिन ने इस अवधारणा को बदलते हुए सर्वहारा के अगुआ के रूप में एक दल की भूमिका से अवगत कराया। हालाँकि लेनिन ने ऐसे किसी तंत्र की स्थापना नहीं की जो कि दल की शक्ति का परिक्षण करता रहे और यह सुनिश्चित करे कि शक्तिशाली नेता सर्वहारा के प्रति जवाबदेह बने रहेंगे। ऐसे में, अंततः जनवादी लोकतंत्र के माध्यम से साम्यवाद को आत्मनियंत्रण का रास्ता मिला है।

7.3.7 समाजवादी लोकतंत्र

समाजवादी लोकतंत्र मार्क्सवादी चिंतन में आधारतभूत परिवर्तन की बात करता है। यद्यपि दोनों के लक्ष्यों में समानता है, परन्तु समाजवादी लोकतंत्र क्रांति के बजाय उत्पादन के साधनों पर राज्य के नियंत्रण के माध्यम से इसे प्राप्त करना चाहते हैं। समाजवादी लोकतंत्रवादी लोकतंत्र की इस मार्क्सवादी समालोचना में विश्वास नहीं रखते क्योंकि इसमें वर्गीय-शासन के लिए बुर्जुआ ताकतें मुखौटा पहने रखती हैं। इसके बजाए समाजवादी लोकतंत्रवादी लोकतंत्र को समाजवादी लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए अनिवार्य मानते हैं। इस कारण वे नागरिकों के कल्याण को सुनिश्चित करने के लिए व्यापार और उद्योग में राज्य के नियंत्रण की बात करते हैं।

7.3.8 ई-लोकतंत्र

यह तुलनात्मक रूप से नयी संकल्पना है, लेकिन यह पूर्व के सिद्धान्तकारों द्वारा किये गये कार्यों पर ही आधारित है। प्रतिनिधि लोकतंत्र को और अधिक बेहतर बनाने या इसे प्रतिस्थापित करने के लिए सूचना और प्रौद्योगिकी को प्रयोग ही इलेक्ट्रानिक लोकतंत्र या ई-लोकतंत्र कहलाता है। सभी लोकतंत्रों में उभयनिष्ठ समस्याएँ यथा–मापन का मुद्दा, समय का अभाव? सामुदायिक मूल्यों में गिरावट, नीतियों पर विमर्श के लिए अवसरों का अभाव आदि को डिजिटल संचार के माध्यम से ही निबटा जा सकता है। ई. लोकतंत्र के समर्थकों ने नीति-निर्माण में सक्रिय नागरिक भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए सहभागी-लोकतंत्र के विचार का निर्माण किया है।

बोध प्रश्न 3

नोटः अ) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये गये स्थान का उपयोग करें।

ब) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलायें।

1) जनवादी लोकतंत्र की कमियां क्या-क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2) ई-लोकतंत्र से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

7.4 भारतीय लोकतंत्र पर एक नजर

भारत जो कि 1947 ई. में ब्रिटिश शासन से आजाद हुआ, 80 करोड़ से ज्यादा मतदाताओं के साथ भारत को दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र माना जाता है। भारत, ब्रिटिश, द्वारा थोपे गये संविधान को नहीं मानना चाहता था, इस कारण संविधान निर्माण के लिए अप्रत्यक्ष रूप से चुने हुए लोगों द्वारा संविधान सभा का निर्माण किया गया। यद्यपि यह बात उल्लेखनीय है कि एक ऐसी संविधान सभा जो लोगों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से नहीं चुनी गयी थी, उसने सार्वजनीन व्यक्त मताधिकार की संकल्पना को स्वीकार किया। संविधान सभा में चर्चा के द्वौरान जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, भीमराव अम्बेडकर और एन वी गाडगिल ने भारत के लिए लोकतंत्रीय शासन-प्रणाली को अपनाने की बात की, क्योंकि उनका मानना था कि भारत ब्रिटिश काल से ही इस व्यवस्था से परिचित था। जबकि आर एन सिंह, लोकनाथ मिश्र और ब्रजेश्वर प्रसाद जैसे लोगों ने संसदीय व्यवस्था का विरोध किया। आर.एन.सिंह ने कहा था कि ईमानदार मंत्रियों, उपमंत्रियों और संसदीय सचिवों की फौज का मिलना मुश्किल है। उन्होंने तर्क दिया कि अध्यक्षीय शासन प्रणाली के अंतर्गत एक ईमानदार राष्ट्रपति को पाना तुलनात्मक रूप से आसान है। भारत के पूर्व के अनुभव को आधार मानते हुए संविधान सभा ने संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया। कुछ विद्वानों का मानना है कि लोकतंत्र पश्चिमी संकल्पना थी और इसे भारत के लोगों पर थोपा गया जबकि भारतीयों के पास इसका कोई अनुभव नहीं था। फिर भी आधुनिक राजनीति में जिस राज्य के स्वरूप की शुरुआत 19वीं सदी के मध्य में भारत में हुई थी, उसने सार्वजानिक मुद्दों पर लोगों को एकत्रित करने और राज्य के समक्ष अपनी मांगों को रखने की शुरुआत की। पूना सार्वजनिक सभा जैसे संगठन का निर्माण मध्य वर्ग और पारंपरिक कुलीनों ने किया , जिसने भारत में लोकतंत्र की नींव रखी गयी। ब्रिटिश काल में लोकतंत्र का निर्माण केंद्रीय और प्रांतीय विधायी परिषदों के विकास के माध्यम से हुआ। आजादी के पश्चात् सार्वजनीन व्यस्क मताधिकार पर आधारित सामयिक चुनाव ने भारतीय राजनीति में लोकतान्त्रिक संस्थाओं की

जड़ों को जमाया। भारत में राजनीतिक दलों की सामाजिक संरचना बदल रही है जिसकी वजह से विधान सभाओं, संसद तथा मंत्रालय भी पहले की तुलना में ज्यादा प्रतिनिधित्यात्मक हो गए हैं। भारत में लोकतंत्र की मुख्य विशेषताएँ निम्न हैं :

- भारतीय संविधान का प्रस्तावना भारत को एक 'संप्रभु समाजवादी धर्मनिरपेक्ष लोकतान्त्रिक गणराज्य' के रूप में वर्णित करता है। भारत एक संसदीय लोकतंत्र है जो 'एक व्यक्ति–एक वोट' की संकल्पना पर आधारित है।
- संसद और राज्यों की विधान सभाओं में होने वाले स्वतंत्र और निष्पक्ष सामयिक चुनाव सार्वजनीन व्यस्क मताधिकार पर आधारित हैं।
- विधि का शासन यह सुनिश्चित करता है कि भारत का लिखित संविधान सर्वोच्च है, जिसकी व्याख्या और रक्षा करने का अधिकार स्वतंत्र न्यायपालिका को है।
- कार्यपालिका, विधायिक और न्यायपालिका के बीच शक्तियों का पृथक्करण पाया जाता है।
- भारत का संविधान अपने नागरिकों को मौलिक अधिकार प्रदान करता है – समानता का अधिकार (अनु. 14-18), स्वतंत्रता का अधिकार (अनु. 19-22), शोषण के विरूद्ध अधिकार (अनु. 23-24) धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार (अनु. 25-28), शैक्षिक और सांस्कृतिक अधिकार (अनु. 29-30), संवैधानिक उपचारों का अधिकार (अनु. 32)।
- भारत में बहुदलीय प्रणाली का अस्तित्व है जिसके अंतर्गत राष्ट्रीय और क्षेत्रीय पार्टियाँ राजनीति में समान रूप से जगह बनाने के लिए प्रयासरत हैं, जिस कारण से लोकतंत्र गतिशील और जीवंत बना हुआ है। सबसे बड़े विपक्षी दल के नेता सदन में नेता प्रतिपक्ष की भूमिका निभाता हैं, लेकिन भारतीय संविधान के अनुसार इसके लिए उस दल को सदन की कुल सीटों की संख्या का न्यूनतम दस प्रतिशत सीट लाना अनिवार्य होता है।
- भारत में मीडिया राज्य के हस्तक्षेप से मुक्त है, जो कि सरकार द्वारा क्रियान्वित नीतियों को लेकर जनमत बनाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

बहुत सी ऐसी उपलब्धियां हैं जिनके लिए भारत में लोकतंत्र को जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। उनमें से सबसे महत्वपूर्ण यह है कि भारतीय लोकतान्त्रिक अनुभव ने उनके संशयों को गलत सिद्ध किया है जो यह कहते हैं कि भारत में जाति, धर्म, भाषा, संस्कृति और क्षेत्र के सन्दर्भ विविधता के कारण यहाँ लोकतंत्र सफल नहीं हो सकता। पड़ोसियों से भिन्न, भारत में लोकतंत्र अच्छे से कार्य कर रहा है, जो कि भारत की लोकतान्त्रिक संस्थाओं और अभ्यासों के लचीलेपन को दर्शाता है। भारत अपनी साक्षरता दर में वृद्धि और गरीबी में कमी करने में सफल रहा है और साथ ही समाज के कमजोर तबकों को लोकतान्त्रिक प्रक्रिया के मध्यम से मुख्यधारा में लाने में भी सफलता प्राप्त की है। बिना किसी हिंसा और लोकतान्त्रिक माध्यमों से शक्ति का हस्तांतरण समाज के प्रभुत्वशाली वर्गों और जातियों से पिछड़ी जातियों और वर्गों को हुआ है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर, भारत धीरे-धीरे सहायता प्राप्त करने वाले देशों से सहायता देने वाले देशों की ओर रूख कर रहा है, भारत ने दक्षिण एशिया के अनेक देशों को आर्थिक सहायता प्रदान की है।

इसके बावजूद कुछ ऐसी चुनौतियाँ भी है जो अभी भी भारतीय लोकतंत्र पर प्रश्न खड़ा करती है। राजनीतिक हिंसा उनमें से एक प्रमुख मुद्दा है जिसका समुचित समाधान किये जाने की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए नक्सलवाद और उत्तर-पूर्व में विद्रोह को प्रायः लोकतंत्र के ऊपर धब्बा के रूप में उद्धरित किया जाता है। यहाँ डॉ. भीमराव अम्बेडकर के उन कथनों को बार-बार दुहराए जाने की आवश्यकता है। उन्होंने राजनीतिक समानता को

अपर्याप्त मानते हुए सामाजिक और आर्थिक समानता का तर्क दिया था। उन्होंने कहा था कि सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र की दीर्घावधिक असमानता राजनीतिक लोकतंत्र के लिए खतरा सिद्ध होगी, क्योंकि जो भुगत रहे हैं वे राजनीतिक संरचना को झटका दे सकते हैं। मतदान के दौरान फर्जी वोट, धनबल और बाहुबल की भूमिका जैसे मुद्दों से निबटने के लिए तत्काल चुनाव-सुधार की आवश्यकता है। भ्रष्टाचार और आर्थिक असमानता जैसे मुद्दे भारत में कार्यरत लोकतंत्र और विधि के शासन को कमजोर करने में निर्धारक भूमिका निभा रहे हैं। लोगों द्वारा मतदान का प्रतिशत कम होने के कारण प्रतिनिधित्व की अपर्याप्तता भी देखने को मिलती है। इस पूरे विश्लेषण में, यह आसानी से विश्लेषित नहीं किया जा सकता कि भारत लोकतंत्र सफल है या असफल। प्रक्रियात्मक लोकतंत्र को और अधिक मजबूत किये जाने की आवश्यकता है और अधिक प्रतिनिध्यात्मक और उत्तरदायित्वपूर्ण बनाने की आवश्यकता है, जो सही अर्थों में वास्तविक लोकतंत्र की स्थापना होगी।

बोध प्रश्न 4

नोटः अ) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये गये स्थान का उपयोग करें।

ब) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलायें।

1) भारत में लोकतंत्र की विशेषताएँ

.....

.....

.....

.....

.....

7.5 सारांश

लोकतंत्र की संकल्पना का विकास वर्षों में हुआ है और इस दौरान यह अधिक समावेशी होता गया है। राजनीति विज्ञान के सबसे विवादित विषयों में से लोकतंत्र एक है। इसके अर्थ को लेकर सहमत हैं परन्तु इस बात को लेकर सहमत नहीं हैं कि इसे प्राप्त कैसे किया जाय। प्रत्यक्ष से लेकर अप्रत्यक्ष तक लोकतंत्र के विभिन्न प्रकार हैं। इतनी विविधता होने के बावजूद भारत में लोकतंत्र सफल हो सका है, क्योंकि यहाँ विभिन्न वर्गों को राजनीतिक परिचर्चा में सहभाग करने और विभिन्न दावों को सामने रखने का अवसर दिया गया है। भारत को अपने लोकतंत्र को अधिक प्रतिनिधिमूलक और उत्तरदायित्वपूर्ण बनाने की आवश्यकता है, तभी वंचित वर्गों हेतु वास्तविक लोकतंत्र की स्थापना हो पाएगी।

7.6 सन्दर्भ

अब्बास, होयेदा और कुमार, रंजय कुमार, (2012) *पोलिटिकल थ्योरी,* नई दिल्ली : पीअरसन

भारत में लोकतंत्र संवैधानिक सरकार, URL :http://vle.du.ac.in/mod/book/view.php?id=11805&chapterid=23271

डह्ल, रॉबर्ट (1989), *डेमोक्रेसी एंड इट्स क्रिटिक्स,* येल यूनिवर्सिटी प्रेस : सीटी, न्यू हवेन,

डह्लरॉबर्ट, 2018, Encyclopeida Britannica URL:https://www.britannica.com/topic/democracy

हेवुड, एंड्रू, पॉलिटिक्स, हैम्पशायर : पल्ग्रेव मैकमिलन स्टैनफोर्ड इंसाइक्लोपीडिया ऑफ़ फिलोसोफी, URL : https://plato.stanford.edu/entries/democracy/

वोरो, राजेन्द्र और सुहास पल्शिकर (2004), इंडियन डेमोक्रेसी : मीनिंट एंड प्रैक्टिस, नई दिल्ली, सेज पब्लिकेशन इंडिया प्राइवेट लिमिटेड 2004

7.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आपके उत्तर में निम्न बिंदु शामिल होने चाहिएः
   - शब्दों के यूनानी मूल।
   - प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष लोकतंत्र में अंतर।
   - जनता के द्वारा शासन।
   - लोकतंत्र के लाभ को लेकर मिल का दृष्टिकोण।
2) प्रतिनिधि लोकतंत्र के सीमित और प्रत्यक्ष रूप का वर्णन।

बोध प्रश्न 2

1) आपका उत्तर लोकतंत्र के तंत्र और वास्तविक अभ्यास के बीच अंतर पर केन्द्रित होना चाहिए।

बोध प्रश्न 3

1) राजनीतिक दलों और शक्तिशाली नेताओं पर कोई नियंत्रण नहीं है।
2) लोकतंत्र के विकास और प्रसार में सूचना और तकनीकि का प्रयोग।

बोध प्रश्न 4

1) निम्नलिखित बिन्दुओं को प्रकाशित करें।
   - संविधान की प्रस्तावना भारत को एक लोकतान्त्रिक देश के रूप में वर्णित करती है।
   - सार्वजनीन व्यस्क मताधिकार पर आधारित स्वतंत्र और निष्पक्ष सामयिक चुनाव।
   - मौलिक अधिकार
   - बहुदलीय प्रणाली का अस्तित्व।
   - राज्य के नियंत्रण से मुक्त मीडिया।

इकाई 8 जेंडर*

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 जेंडर का अर्थ

8.3 जेंडर और राजनीति

8.3.1 एक लक्ष्य के रूप में जेंडर समानता, सामरिक के रूप में मुख्यधारा में जेंडर

8.3.2 जेंडर सम्बन्धी मुद्दे अैर प्रवृत्तियाँ

8.4 पितृसत्ताः जेंडर असमानता की समझ

8.5 पितृसत्ता की उत्पत्ति के सिद्धान्त

8.5.1 परम्परावादी विचारधारा

8.5.2 परिवर्तनकारी नारीवादी विचारधारा

8.5.3 समाजवादी विचारधारा

8.6 जेंडरः संकल्पना और सिद्धान्त

8.6.1 नारीवादी सिद्धान्त

8.6.2 उदारवादी नारीवाद

8.7 सारांश

8.8 संदर्भ

8.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

8.0 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य जेंडर के अर्थ की समझ और इस संकल्पना से सम्बन्धित महत्वपूर्ण सैद्धान्तिक मुद्दों की छानबीन करना है। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आपः

- जेंडर की संकल्पना को स्पष्ट कर सकेंगे;
- जेंडर और राजनीति के बीच सम्बन्धों को समझ सकेंगे; और
- पितृसत्ता की संकल्पना को स्पष्ट कर सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

जब तक नारीवादी सिद्धान्त को शैक्षिक रूप के परिप्रेक्ष्य के स्वरूप में मान्यता प्राप्त नहीं हुई थी, तब तक समकालीन राजनीतिक सिद्धान्त व्यापक रूप से जेंडर-मध्यस्थ था। इस मान्यता की अब व्यापक आलोचना की गई है। राजनीतिक सिद्धान्त में जो जेंडर विषय को स्पष्ट करने में लगे हुए थे, वे वहीं लोग थे जो नारीवादी कार्यक्रम को आगे बढ़ाने के लिए प्रयासरत थे और वे स्वयं भी नारीवादी विचारधारा के विद्वान लोग थे। ये नारीवादी ही थे जोकि इस भ्रम के प्रति अत्यधिक संवेदनशील थे जो पुरुषों को व्यक्तियों और पुरुषत्व को तटस्थ से जोड़ा जाता है। इसलिए, यहाँ नारीवादी राजनीतिक सिद्धान्त ने हाल ही के समय

*डॉ. रचना सुचिन्मयी, मगध विश्वविद्यालय, पटना

में जेंडर पर विस्तृत सिद्धान्तीकरण किया है। यह पूर्णतया संभव है कि राजनीतिक सिद्धान्त में जेंडर नारीवाद से विभिन्न परिप्रेक्ष्यों से समझा जाएँ। इसलिए, उदाहरण के लिए क्रमतर बढ़ता साहित्य है जोकि मनुष्य और पुरुषत्व पर ध्यान देता है और जो द्धजक द्धद में जेंडर की चिंताओं पर प्रकाश डाल सकता है और जोकि विस्तृत नारीवादी साहित्य से भिन्न है। फिर भी, वर्तमान समय तक राजनीति की अत्यधिक विस्तारित पुरुषत्व प्रकृति हो रही है, यह नारीवादी रहे हैं जिनका कि सबसे सशक्त राजनीतिक प्रोत्साहन रहा है तथा बौद्धिक महत्वाकांक्षा राजनीतिक सिद्धान्त में जेंडर के सिद्धान्त को विकसित करना।

जेंडर हमारे राजनीतिक और सामाजिक भूदृश्य और हमारे व्यक्तिगत पारस्परिक क्रियाकलापों को आकार प्रदान करता है। जेंडर समकालीन राजनीतिक सिद्धान्त के लिए एक महत्वपूर्ण दृष्टि है, कि न जो केवल मुख्यधाराओं के सिद्धान्तों को अपनाने के लिए उनकी सीमाओं और आकांक्षाओं को समझने की शक्ति देता है, बल्कि यह एक नए वाद-विवाद पर प्रकाश भी डालता है। जेंडर हमारी संस्थाओं, हमारे कार्यों, हमारे विश्वास और हमारी आकांक्षाओं में इतनी व्यापकता से गुंथा हुआ है कि यह हमें पूरी तरह से प्राकृतिक दिखाई देता हैं। राजनीति एक वास्तविक विश्व की परिघटना के रूप में और राजनीतिक विज्ञान एक शैक्षणिक विषय के रूप में जेंडर प्रभावित हैं। राजनीति का अध्ययन आज अपना व्यापक रूप स्थापित कर चुका है और यह अब केवल एक राजनीतिक पद धारण करने और वितरण की राजनीति तक सीमित नहीं रहा है। अब यह अपना व्यापक रूप धारण कर चुका है, इसलिए हमें इसकी सीमाओं को छोटा नहीं करना चाहिए। यह अब अनेक नए समूहों को अपने में समाहित कर चुका है जैसे कि "जेंडर संकट" (अन्तरकक्षीय या वर्गीय, यौन क्रियाएँ तथा पश्च-संरचनात्मकतावाद) तथा इसी प्रकार से पुरुषत्व तथा नारीत्व के विषयों की सीमाओं के बाहर विस्तारित हो चुका है। इसके लिए नए विचार इस सम्बन्ध में अपना आकार स्थापित कर चुके हैं जैसे कि आवास से घर तक और फिर यहाँ से संसद तक। अभी जेंडर और राजनीति की लहर फैल चुकी है तथा जेंडर सक्रियतावाद का एक लम्बा इतिहास रहा है। फिर भी जेंडर अभी तक शैक्षणिक राजनीतिक विज्ञान में अत्यधिक उपेक्षित रहा है। परम्परागत ध्यान राजनीति पर रहा है जैसे कि सरकार के अध्ययन के रूप में और चुनावी राजनीति पर संगठनों अथवा राजनीतिक भद्रलोक और औपचारिक संस्थाओं पर महिलाएँ और जेंडर दोनों ही अदृश्य रहे हैं, जबकि कल्याणकारी राज्य के निर्माण में उनकी महत्वपूर्ण आधारिक भागीदारी रही है और औपनिवेशिक युग के बाद राष्ट्र निर्माण में सहयोग रहा है। यहाँ तक कि युद्ध और आतंकवाद से निपटने और इससे अधिक सामान्यतः सामाजिक तथा आर्थिक सुविधाओं के वितरण या निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान को नहीं भुलाया जा सकता है। इन प्रमुख आकांक्षाओं के स्रोतों के सम्बन्ध में एंग्लो-अमरीकन परम्परा में राजनीति की स्थापना के इतिहास की खोज खबर के लिए हमें जॉन लॉक जैसे विद्वान के राजनीतिक सिद्धान्तकार के रूप में किए गए कार्यों पर अपना ध्यान देना होगा, जिन्होंने सार्वजनिक निजी क्षेत्र की भिन्नता को अपने विचारों का आधार बनाया है। एंग्लो-अमरीकन विषयों ने निजी-सार्वजनिक भेद की परासांस्कृतिक तथा सार्वभौमिक पराऐतिहासिकता को व्यापकता से स्वीकार किया है जैसे कि नागरिक या परिवार का मुखिया है जो सार्वजनिक क्षेत्र में सक्रियता से कार्य करता है। इस धारणा के अंतर्गत महिलाएँ घरेलू कार्यों में सम्मिलित हैं अथवा निजी क्षेत्र के अंतर्गत वह एक परिवार का हिस्सा है, जहाँ पर प्रत्येक व्यक्ति अपने घर का मालिक है और यही उसका किला है और यहाँ पर व्यक्ति बिना किसी राज्य के हस्तक्षेप से मुक्त है और अपनी इच्छा से सब कुछ अपनी परिधि में करने के लिए स्वतंत्र हैं। यह जो विश्लेषण किया गया है, इसमें यानी सार्वजनिक क्षेत्र से महिलाओं को अलग कर दिया गया है। इस राजनीतिक रचना क्षेत्र में से महिला को निकाल कर पुरुष सार्वजनिक क्षेत्र का निर्माण किया गया और महिलाओं की विधिकता को राजनीतिक विषयों से बाहर कर दिया गया। इसके फलस्वरूप जब महिलाओं को स्पष्ट रूप से सामने आना

होता है, तो निजी क्षेत्र को राजनीतिक सीमाओं से बाहर रख दिया जाता है और इसलिए विषय के वैधानिक विषय मामलों के हिस्सों में उन्हें सम्मिलित नहीं किया गया। परंतु महिलाओं से सम्बन्धित नियम-विनियमों तक की उनकी पहुँच जैसे कि गर्भपात, यौनिकता का भेदभाव और पुरुषों द्वारा की जाने वाली महिलाओं के विरुद्ध हिंसा, उनके पारिवारिक रिश्तेदारों के विरुद्ध, ये सब तब और अब भी सरकारों के कार्य क्षेत्र में जाते हैं। यह सब अलग-अलग क्षेत्रों की विचारधारा में असंगतता और जेंडर-पूर्वाग्रह दर्शाते हैं।

8.2 जेंडर का अर्थ

जेंडर शब्द समाजशास्त्रीय रूप से अथवा एक संकल्पनात्मक श्रेणी के रूप में प्रयोग किया जाता है और इसका अर्थ बहुत ही विशिष्ट है। अपने नए रूप में जेंडर शब्द का पुरुष और महिलाओं की सामाजिक-सांस्कृतिक परिभाषा के रूप में प्रयोग नया जन्म किया जाता है। कैसे समाज इनको पुरुषों और महिलाओं के नाम से अलग करता है और इसी आधार पर इनको सामाजिक भूमिका निभाने का कार्य प्रदत्त करता है। इसका प्रयोग महिलाओं और पुरुषों की सामाजिक वास्तविकताओं को समझने के लिए किया जाता है। लिंग और जेंडर के बीच अंतर उस सामान्य प्रवृत्ति को निरस्त करने के लिए प्रस्तुत किया गया जो महिलाओं की अधीनता को उनके शारीरिक रचनातंत्र से जोड़ता है। यह युगों से विश्वास किया जाता रहा है कि इनकी विशेषताएँ, भूमिका और स्तर का निर्धारण जैविक आधार पर किया जाता है जोकि एक प्राकृतिक सत्य है तथा इसलिए, इसमें परिवर्तन नहीं हो सकता है। प्रत्येक संस्कृति में बालिकाओं और बालकों के मूल्यांकन का अपना एक मार्ग है, और इनको अलग-अलग भूमिका प्रतिक्रिया और लक्षण प्रदान करने का। सभी सामाजिक और सांस्कृतिक "पैकेजिंग", जोकि बालिकाओं और बालकों के जन्म से ही आरंभ हो जाती है, उसे जेंडर संबद्ध (gendering) कहते हैं। एन्न ओकले जो कि प्रथम कुछेक नारीवादी विद्वानों में से एक हैं जिन्होंने इस संकल्पना का पहली बार प्रयोग किया था, कहती हैं कि "जेंडर एक संस्कृति का मामला है, जो कि पुरुष और महिला के सामाजिक वर्गीकरण को पुरुषत्व और नारीत्व के रूप में संदर्भित करता है।" लोग सामान्यतः जैनिक साक्ष्यों के आधार पर निर्धारित करते हैं कि कौन पुरुष या महिला है। इसके साथ यह भी है कि वे इसी ही प्रकार से पुरुषत्व या नारीत्व का निर्धारण नहीं कर सकते हैं : क्योंकि इसका पता लगाने के लिए आधार सांस्कृतिक और समय तथा स्थान का विभेद हो सकता है। इसके साथ ही लिंग की स्थिरता की स्वीकृति है, परन्तु जेंडर का विभेद हो सकता है। जेंडर की उत्पत्ति जैविक नहीं होती है और लिंग तथा जेंडर के बीच सम्बन्ध प्राकृतिक भी नहीं होता है।

जेंडर सम्बन्धों के ढाँचे में स्थित होता है जोकि समय के साथ विकसित होते हैं और पुरुष और महिला को परिभाषित करते हैं और पुरुषत्व और नारीत्व को भी। साथ ही साथ व्यक्तियों के समाज के साथ सम्बन्धों को आकार प्रदान करते हैं और विनियमित करते हैं। यह समाज के प्रत्येक पक्ष में गहराई से जुड़ा है, जैसे कि हमारी संस्थाओं में, सार्वजनिक स्थानों, कलाओं में, वस्त्रों में और गतिविधियों में जेंडर सरकारी कार्यालयों से लेकर गलियों के खेलों तक से जुड़ा हुआ होता है। यह परिवार, आसपड़ोस, चर्च, विद्यालय, मीडिया, गली में आना-जाना, रेस्ताओं में भोजन करना, आराम कक्षों में जाना इत्यादि सभी में समाहित होता है। और ये सभी स्थापनाएँ तथा स्थितियाँ एक-दूसरे से एक संगठित प्रकार से जुड़ी हैं। यह विकास से सम्बन्धित वर्तमान के आख्यानों और क्रियाओं की सफलता का परिणाम है कि "महिला" और "जेंडर" की इनमें महत्वपूर्ण स्थिति है। जेंडर की संकल्पना को एक क्रॉस-कटिंग (cross-cutting) सामाजिक-सांस्कृतिक कारक के रूप में समझने की आवश्यकता है। वह एक ओवरआर्किंग (overarching) कारक है इस अर्थ में कि जेंडर का प्रयोग अन्य समस्त क्रॉस-कटिंग (cross-cutting) कारकों जैसे कि नस्ल, वर्ग, अवस्था, नृजातीय समूहों

के संदर्भ में भी किया जा सकता है। जेंडर व्यवस्था में विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों में स्थापित की गई हैं जोकि यह निश्चित करते हैं कि एक महिला/पुरुष तथा बालिका/बालक से क्या आकांक्षा, अनुमति और मूल्य हो। जेंडर की भूमिकाओं को सामाजीकरण की प्रक्रियाओं के माध्यम से जाना जा सकता है; यह निश्चित नहीं बल्कि परिवर्तनशील हैं। जेंडर व्यवस्थाओं को शिक्षा व्यवस्था, राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था, कानून तथा संस्कृति और परम्पराओं के माध्यम से संस्थापित किया जाता है। जहाँ तक इसके प्रयोग का सम्बन्ध हैं, जेंडर दृष्टिकोण एकल, महिलाओं और पुरुषों पर ध्यान डालता है, बल्कि उस व्यवस्था पर ध्यान देता है जिसमें जेंडर की भूमिका/उत्तरदायित्व, पहुँच तथा संसाधनों पर नियंत्रण, एवं संभावित निर्णय लेने की निर्धारण होता है।

यहाँ पर यह बल देना भी बहुत ही महत्वपूर्ण है कि जेंडर की संकल्पना महिलाओं के साथ अन्तरपरिवर्तनीय नहीं है। जेंडर का अर्थ दोनों महिला और पुरुष हैं और उनके सम्बन्ध। जेंडर समानता को उन्नत करने के सम्बन्ध में पुरुषों के साथ महिलाओं को भी संबद्ध करना चाहिए। हाल के वर्षों में जेंडर परिप्रेक्ष्य पर अनुसंधानों में पुरुषों को अधिकता से सम्मिलित किया गया है। पुरुषों पर प्रकाश डालने में वृद्धि करने की दिशा में तीन प्रमुख दृष्टिकोणों को अपनाया गया है। प्रथमतः पुरुषों की पहचान जेंडर समानता के समर्थकों के रूप में और इस कार्य में उनकी और अधिक सक्रियता। द्वितीय, यह मान्यता कि जेंडर समानता तब तक संभव नहीं है जब तक पुरुष अनेक क्षेत्रों में अपनी प्रवृत्तियों और व्यवहारों में परिवर्तन नहीं करते हैं; उदाहरण के लिए, जनन अधिकार और स्वास्थ्य का अधिकार। तृतीय, यह है कि जेंडर व्यवस्था अनेक स्थानों, अनेक संदर्भों में पुरुषों और महिलाओं, दोनों के लिए नकारात्मक मानी गई है – पुरुषों पर अप्रासंगिक माँगों और संकुचित परिभाषित तरीकों से व्यवहार करने का दबाव होता है। दिलचस्प अनुसंधान किए जा रहे हैं, दोनों महिलाओं और पुरुषों द्वारा पुरुषों की पहचान और पुरुषोत्व पर। इस तरह से पुरुषों पर प्रकाश डालने की प्रवृत्तियों में वृद्धि हुई है जोकि विकास में जेंडर परिप्रेक्ष्य के साथ कार्य करने के लिए भविष्य की कार्यनीतियों पर प्रभाव डालेगा। समानता का अर्थ आजीविका के संसाधनों, स्वास्थ्य और शिक्षा के क्षेत्रों में पहुँच के लिए समान अवसरों की उपलब्धि, और इसी प्रकार सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में बिना भेदभाव के भागीदारी को निश्चित करना है। जेंडर की समानता शक्ति और प्राधिकारिता, वर्ग-जाति, पदानुक्रम तथा सामाजिक-सांस्कृतिक परम्पराओं, रिवाजों और मानकों से उपजती हैं।

बोध प्रश्न 1

नोटः अ) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये गये स्थान का उपयोग करें।

ब) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलायें।

1) जेंडर शब्द से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

8.3 जेंडर और राजनीति

अधिकतर आधुनिक लोकतान्त्रिक देशों में पुरुषों और महिलाओं के बीच समानता का मुद्दा मुख्यधारा के राजनीतिक आख्यानों में प्रमुख आदर्श बन गया है। पुरुषों और महिलाओं को प्राकृतिक रूप से समान अधिकार प्राप्त होने चाहिए और किसी को भी राजनीतिक जीवन से अलग या वंचित नहीं किया जाना चाहिए। फिर भी विभिन्न देशों तथा विभिन्न राजनीतिक क्षेत्रों में भेद है इस तथ्य को लेकर कि कितनी असमानता है और कैसी। इसके अनेक कारण हैं कि क्यों कुछ देशों अथवा कुछ नीति क्षेत्रों में अधिक जेंडर समानता है। और शासनतंत्र तथा संस्थात्मक विशेषताओं से लेकर सांस्कृतिक तत्वों का प्रयोग किया गया है, यह व्याख्या करने के लिए कि क्यों अभी तक सामान्यतः पुरुष राजनीतिज्ञों द्वारा अपना आधिपात्य स्थापित किया हुआ है। राजनीति में जेंडर विषय पर व्यापक साहित्य लिखा गया है। राजनीति में जेंडर असमानता के क्रियाकलाप विविध प्रकार के हैं। जैसे कि मतदान, अभियान करना और नेतृत्व में और इसी प्रकार से राजनीतिक ज्ञान, समाजीकरण, प्रवृत्तियाँ और राजनीतिक सिद्धान्त में महिलाओं का स्थान। जेंडर और राजनीति से सम्बन्धित विषयों के सम्बन्ध में दृष्टिकोणों की विविधताएँ इसमें सम्मिलित हैं :

- प्रथम, महिलाएँ विदित हैं राजनीति विज्ञान की श्रेणियों और विश्लेषणों में और इस कारण विश्लेषण की क्लासिकी इकाइयों में जैसे कि नागरिक, मतदाता, विधायिक, पार्टियों, विधायक, राज्यों ओर राष्ट्रों का जेंडीकरण होता है।
- द्वितीय, महिलाओं के संदर्भ में उन राजनीतिक गतिविधियों का परीक्षण किया गया है जोकि परम्परागत राजनीतिक विज्ञान से बाहर रही हैं।
- तृतीय, जेंडर को सामाजिक संगठन की संरचना के रूप में देखा गया।
- अंतिम, व्यापक नारीवादी आन्दोलन, वाली महिलाएँ (हाशिये पर पड़ी नस्लों और नष्जातियता की महिलाएँ), विकासशील विश्व में महिलाएँ, औपनिवेशिक शासन के बाद की नारीवादी तथा एल.जी.बी.टी.क्यू. विद्वान जो जेंडर राजनीति के अध्ययन में स्थान प्राप्त करने के लिए दबाव बनाने के प्रयास में रत रहे, कभी-कभी उन्हें सहमति प्राप्त हुई और कभी कुंठा।

राजनीति और जेंडर के बीच विशम और विरोधाभासी सम्बन्ध है। एक ओर, जेंडर सम्बन्धी मुद्दे स्पष्ट रूप से राजनीति की समझ के केन्द्र में स्थित होते हैं। दोनों व्यवहार में तथा राजनीति का अध्ययन लम्बे समय तक कुख्यात पुरुषवादी प्रयास रहे हैं। अत्यधिक व्यवहार में देखा गया है कि अनेक वृत्ताकारों ने तर्क दिए हैं कि राजनीति ऐतिहासिक रूप से सबसे अधिक पुरुषत्व वाली वाली गतिविधि रही है। यह विशेष रूप से पुरुषों तक सीमित रही है तथा किसी भी अन्य सामाजिक व्यवहार से अधिक पुरुषत्व वाली गतिविधि रही है। राजनीति का संस्थागत अविर्भाव जो कि सरकार में निहित है, वह महिलाओं के हितों और परिप्रेक्ष्यों का विरोधी रहा है। महिलाओं को सामान्यतः पारंपरिक राजनीतिक गतिविधियों से जानबूझ कर दूर रखा जाता है और राजनीतिक कार्यकर्त्ता या नेता के रूप में अपनी गतिविधियों को प्रदर्शित करने पर उन्हें हतोत्साहित किया जाता है, उनकी अनदेखी की जाती है। इस अर्थ में जेंडर के जो मुद्दे हैं वह राजनीति की परिभाषा और इसके संचालन का बहुत पहले से हिस्सा रहे हैं। दूसरी ओर, जेंडर के मुद्दे को राजनीतिक के लिए सामान्यतः अप्रासंगिक माना जाता है। यदि जेंडर को महिलाओं के साथ समानार्थी समझा जाता है, तो महिलाओं की राजनीतिक क्षेत्र में अनुपस्थिति के चलते हम यह कह सकते हैं कि जेंडर का मुद्दा राजनीति में प्रासंगिक नहीं है।

8.3.1 एक लक्ष्य के रूप में जेंडर समानता, सामरिक के रूप में मुख्यधारा में जेंडर

जेंडर समानता की शब्दावली को संयुक्त राष्ट्र में प्रमुखता दी गई है, न कि जेंडर समानता (Equity) को। जेंडर समानता सामाजिक न्याय से सम्बन्ध रखती है और जोकि प्रायः परम्परा, रिवाज़, धर्म या संस्कृति पर आधारित होता है और प्रायः महिलाओं के विरोध में होता है। इस प्रकार से महिलाओं की उन्नति के सम्बन्ध में समानता का प्रयोग करना स्वीकार्य नहीं है। सन् 1995 में बीजिंग में आयोजित महिला सम्मेलन में सबकी यह सहमति बन गई थी कि समानता के शब्द का प्रयोग किया जाएगा। समानता का अर्थ यह है कि व्यक्ति के अधिकार, जिम्मेदारियाँ, और अवसरों की उपलब्धता इस विषय पर निर्भर नहीं करेगी कि क्या वे महिला या पुरुष पैदा हुए हैं। समानता का अर्थ यह भी नहीं है कि "एक" – जेंडर समानता का यह अर्थ भी नहीं है कि महिलाएँ और पुरुष एक समान बन जाएँगे। महिला और पुरुषों के बीच जो समानता है, यह गुणात्मक और मात्रात्मक, दो पक्षों पर आधारित है। मात्रात्मक पक्ष का अर्थ है महिलाओं का समानतापूर्ण (equitable) प्रतिनिधित्व प्राप्त करने की आकांक्षा प्रदर्शित करना जिसमें संतुलन और समानता शामिल हैं। जबकि गुणात्मक पक्ष का अर्थ है महिलाओं और पुरुषों के लिए विकास की प्राथमिकताओं और परिणामों पर समानतापूर्ण प्रभावों को स्थापित करना। समानता यह निश्चित करने में समाहित है कि प्रत्यक्ष स्वीकार्यता, हित, आवश्यकताएँ और महिलाओं तथा पुरुषों की प्राथमिकताएँ (जोकि महिलाओं और पुरुषों की विभिन्न भूमिकाएँ और जिम्मेदारियों के कारण बहुत ही भिन्न हो सकती हैं) को योजना और निर्णय करने के स्तर पर समान रूप से महत्व दिया जाएगा।

जेंडर समानता को उन्नत करने के लिए दो तर्क हैं। यह निम्न प्रकार हैं:

- प्रथम, महिलाओं और पुरुषों के बीच समानता-समान अधिकार, अवसर और जिम्मेदारियाँ – यह मामला मानव अधिकारों और सामाजिक न्याय का है।
- द्वितीय, महिलाओं और पुरुषों के बीच समानता, एक पूर्व शर्त और प्रभावी संकेतक एक महत्वपूर्ण भी है। सतत् जन-केन्द्रित विकास के लिए महिलाओं और पुरुषों, दोनों की प्रत्यक्ष स्वीकार्यता, हितों, आवश्यकताओं और प्राथमिकताओं को न केवल सामाजिक न्याय के मामले के तौर पर देखना चाहिए, अपितु ये विकास की प्रक्रिया को सम्पन्न करने के लिए भी नितांत आवश्यक हैं।

जेंडर समानता एक लक्ष्य है जिसको कि सरकारों और अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों ने एकमत से स्वीकार किया है। इसको अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों और प्रतिबद्धताओं में सम्मलित कर लिया गया है। हालाँकि, पूरे विश्व में एक वैश्विक ढाँचा बना हुआ है। असमानता का जोकि महिलाओं के प्रति हिंसा, महिलाओं की राजनीति में भागीदारी तथा निर्णय निर्धारण ढाँचों में उनके प्रतिनिधित्व में प्रदर्शित होता है। महिलाओं के लिए भिन्न और विभेदकारी आर्थिक अवसर होते हैं, उनका क्रय–विक्रय और देह व्यापार होता है। इन मुद्दों के उत्तर में यही हो सकता है कि जेंडर समानता को उन्नत करने के प्रयासों की अत्यंत आवश्यकता है। इस तरह से अधिक समानता को प्राप्त करने के लिए महिलाओं और पुरुषों के लिए अनेकों स्तर पर परिवर्तन करने की आवश्यकता होगी, जिसमें प्रवृत्तियों और आपसी सम्बन्धों में परिवर्तन, संस्थानों और कानूनी ढाँचों में परिवर्तन, आर्थिक संस्थानों में परिवर्तन और राजनीतिक निर्णय-निर्धारण करने वाली संरचनाओं में परिवर्तन करना होगा।

जेंडर मुख्यधारा करण (Gender Mainstreaming) एक संगठनात्मक सामरिक नीति है, एक संस्थान की नीतियों तथा गतिविधियों के सभी पक्षों में जेंडर परिप्रेक्ष्य में जेंडर उन्नत

करने के लिए एक संगठनात्मक कार्य नीति के निर्माण की अत्यंत आवश्यकता है। सन् 1970 के दशक में महिलाओं के विकास के लिए महिला एकीकृत कार्य नीति बनाई गई थी इसमें महिलाओं की एक अलग से इकाई या कार्यक्रमों की स्थापना की थी जो राज्य के अंतर्गत विकास संस्थानों की स्थापना करने योजना थी। जिसकी सन् 1980 के दशक तक गति बहुत ही धीमी रही। इसलिए, इसको ध्यान में रखते हुए यह माना गया कि संस्थागत व्यापक परिवर्तन किए जाएं, यदि सर्वव्याप्त पुरुष श्रेष्ठता को चुनौती देनी है। महिलाओं की विशिष्ट परियोजनाओं को हाशिया पर जोड़ना अब समुचित उपाय नहीं था। अधिकतर प्रमुख विकास संगठनों तथा अनेक सरकारों ने अब जेंडर समानता की दिशा में कार्य करने के लिए जेंडर मुख्यधाराकरण की नीति को अपनाया है। जेंडर मुख्यधाराकरण अपने आप में एक साध्य नहीं है, बल्कि साधनों का एक साध्य है। आर्थिक और सामाजिक परिषद सहमत निष्कर्ष (Economic and Social Council – ESCSOC Agreed Conclusions) (1997/2) में जेंडर मुख्यधाराकरण को विकसित करने के लिए आह्वान किया था। इस सम्मेलन में यह सहमति बनी की संयुक्त राष्ट्र में जेंडर संतुलन की वृद्धि करने की आवश्यकता नहीं है, बल्कि जेंडर परिप्रेक्ष्य पर और संयुक्त राष्ट्र के कार्यों में जेंडर समानता के लक्ष्य को पूरा करने पर ध्यान देने की अत्यंत आवश्यकता है। जेंडर मुख्यधाराकरण के कार्यों के कार्यक्रम के अंतर्गत महिलाओं की परियोजनाओं को अलग से शामिल करने की आवश्यकता नहीं है अथवा वर्तमान क्रियाकलापों के तहत महिलाओं के घटकों को सम्मिलित करने की आवश्यकता नहीं है। बल्कि यह अत्यंत आवश्यक है कि सभी कार्यक्रमों में जेंडर परिप्रेक्ष्य को एक एकीकृत हिस्सा मान कर उनकी भागीदारी को निश्चित किया जाए। इसमें समाहित हैं जेंडर परिप्रेक्ष्यों – महिला और पुरुष क्या करते हैं और संसाधनों तथा निर्णय-निर्धारण प्रक्रिया में उनकी कहाँ तक पहुँच है – को सभी नीतियों के विकास, अनुसंधान, सलाह-मशविरा, विकास, कार्यान्वयन और मानकों की निगरानी, स्तर व नियोजन, कार्यान्वयन और परियोजनाओं को केन्द्र में लाना।

जेंडर मुख्यधाराकरण की स्थापना एक अन्तरसरकारी अधिदेश के रूप में सन् 1995 में बीजिंग घोषणा और प्लेटफार्म फॉर ऐक्शन में निर्धारित की गई थी और फिर इसके बाद सन् 1997 में आर्थिक और सामाजिक परिषद सहमत निष्कर्ष में इसी विषय को सार रूप में सहमति मिली। जेंडर मुख्यधाराकरण के अधिदेश को ताकत मिली थी बीजिंग सम्मेलन (जून 2000) के पश्चात् संयुक्त राष्ट्र की महासभा के विशेष सत्र में। जेंडर मुख्यधाराकरण को संयुक्त राष्ट्र द्वारा विश्व की सरकारों पर थोपा नहीं गया है। संयुक्त राष्ट्र के सदस्य राज्य सन् 1990 के दशक के मध्य से जेंडर मुख्यधाराकरण के सम्बन्ध में अन्तरसरकारी परिचर्चाओं में सतत् सम्मिलित रहे हैं और उनमें यह सहमति रही है कि जेंडर समानता को उन्नत करने के लिए एक महत्वपूर्ण वैश्विक कार्यनीति को अपनाने और उसको क्रियान्वित करने की आवश्यकता है। मुख्यधाराकरण की कार्यनीति का यह अर्थ नहीं है कि महिलाओं को प्रोत्साहित करने वाली विशिष्ट नीतियों की आवश्यकता नहीं है। ऐसी गतिविधियाँ इस प्रकार के क्रियाकलाप महिलाओं की प्राथमिकताओं और आवश्यकताओं को लक्षित करती हैं विधि निर्माण, नीतियों का विकास, अनुसंधान तथा मूल धरातल पर परियोजना/कार्यक्रमों के माध्यम से। महिलाओं की विशिष्ट परियोजनाएँ जेंडर समानता के क्षेत्र में लगातार कार्य करती रहेंगी। उन्हें इसकी अभी भी आवश्यकता है, क्योंकि जेंडर समानता अभी तक पूरी नहीं हुई है और जेंडर मुख्यधाराकरण की प्रक्रिया पूरी तरह से विकसित नहीं हुई है। लक्षित प्रयास जोकि विशेष रूप से महिलाओं या जेंडर समानता को उन्नत करने की दिशा में ध्यान देते हैं। महत्वपूर्ण है वर्तमान असमानताओं को कम करने में और जेंडर समानता को उन्नत करने के लिए उत्प्रेरक के रूप में उनको अपनाना है और मुख्यधारा के परिवर्तन के लिए एक क्षेत्र का निर्माण करना है। महिलाओं पर केन्द्रित विशिष्ट पहले उनके लिए एक

सक्षमतीकरण का स्थान पैदा कर सकती हैं तथा अपने विचारों और कार्यनीतियों के लिए महत्वपूर्ण कार्य करने में सक्षम हो सकती हैं। तब जाकर जेंडर मुख्यधारा के हस्तक्षेप में परिवर्तन करना संभव हो सकता है। पुरुष पर केन्द्रित पहलें जेंडर समता को उन्नत करती हैं, पुरुषों के सहयोगियों को पैदा कर। इसकी निम्नलिखित दो कार्यनीतियाँ हैं – जेंडर मुख्यधाराकरण और महिला सशक्तीकरण – ये एक-दूसरे से प्रतियोगिता में नहीं है। किसी एक संगठन के अन्दर जेंडर मुख्यधाराकरण को जोड़ने का अर्थ यह नहीं है कि लक्षित क्रियाकलापों की अधिक समय तक आवश्यकता नहीं होगी। ये दोनों कार्यनीतियाँ वास्तव में एक-दूसरे की पूरक हैं और जेंडर मुख्यधाराकरण को महिलाओं को सशक्त करने का प्रयोग ऐसे होना चाहिए कि महिलाएँ सक्षम हों।

8.3.2 जेंडर सम्बन्धी मुद्दे और प्रवृत्तियाँ

जेंडर एक मुद्दा है क्योंकि महिलाओं और पुरुषों के बीच मूल रूप से अन्तर और असमानताएँ हैं। यह अन्तर और असमानताएँ विभिन्न तरीकों से अपने आपमें कार्यवृत्त हो सकते हैं, विशिष्ट देशों अथवा क्षेत्रों में, परंतु कुछ व्यापक ढाँचों में प्रश्नों के बिन्दु हैं जिनको हमेशा ही निर्धारित किए जाने की आवश्यकता है। निम्न कुछ महत्वपूर्ण बिन्दु हैं जो कि कैसे और क्यों जेंडर विभेद हैं और विशिष्ट स्थितियों में असमानता क्यों प्रासंगिक हो सकती है, यह दर्शाते हैं:

- **राजनीतिक शक्ति में असमानता (निर्णय निर्धारण, प्रतिनिधित्व में पहुँच):** महिलाओं का संपूर्ण विश्व की राजनीतिक प्रक्रिया में बहुत कम प्रतिनिधित्व है। इसे बहुत ही महत्वपूर्ण ढंग से देखना और समझना है कि औपचारिक निर्णय-निर्धारण संरचना शक्ति में जेंडर विभेद या अन्तर बहुत है (जैसे कि सरकारों, सामुदायिक परिषदों और नीति निर्धारण संस्थानों में) महिलाओं का अल्प प्रतिनिधित्व हैं और महिलाओं के परिप्रेक्ष्य में यह बहुत कम दिखाई देता है। वास्तव में तथ्य यह है कि महिलाओं की प्राथमिकताएँ, आवश्यकताएँ और हित या दिलचस्पी पुरुषों से बिल्कुल अलग होती हैं। पुरुष प्रायः इनमें शामिल नहीं होते हैं अथवा दिखाई नहीं देते हैं। राष्ट्रीय, क्षेत्रीय या उपक्षेत्रीय प्राथमिकताएँ अथवा समुदाय की विशिष्ट आवश्यकताएँ और प्राथमिकताएँ प्रायः बिना महिलाओं के प्रतिफल के परिभाषित की जाती हैं।

- **परिवार के अन्दर असमानताएँ:** परिवारों में आपसी समझौतों और निर्णय निर्धारण और संसाधनों तक पहुँच में असमानता देखी गई है। इससे अनुसंधानों और नीति दोनों के बारे में प्रश्न पैदा हुए हैं जो इस संकल्पना पर आधारित हैं कि परिवार के कार्य एक इकाई के रूप में पूरे होते हैं और यहाँ प्रत्येक सदस्य को समान रूप से लाभ प्राप्त होते हैं। परिवार के स्तर पर भिन्नताओं और असमानताओं की जाँच कई मुद्दों की समझ के लिए प्रासंगिक है। इन मुद्दों में शामिल हैं महिला और पुरुषों की योग्यता या आर्थिक प्रोत्साहन के प्रति प्रतिक्रिया, एच.आई.वी./एड्स की रोकथाम तथा समुचित और समानतापूर्ण सामाजिक सुरक्षा नीतियों के कार्यान्वयन को शामिल करके समझा जा सकता है।

- **कानूनी स्तर और हकों में भिन्नताएँ :** राष्ट्रीय संविधानों और अन्तर्राष्ट्रीय उपायों द्वारा घोषित करने के बावजूद कि महिलाओं और पुरुषों को समान अधिकार प्राप्त हैं, ऐसे बहुत से उदाहरण मौजूद हैं जिनमें व्यक्तिगत स्तर या स्थिति, सुरक्षा, भूमि, वंशागत विरासत और रोज़गार के अवसरों को कानून और व्यवहार के द्वारा महिलाओं को समान अधिकारों से वंचित किया जाता है। एक साध्य के रूप में महिलाओं के लिए दबावों जनित चिन्ता पर ध्यान देना आवश्यक है। परन्तु यह इसके लिए भी महत्वपूर्ण

है कि आर्थिक उत्पादकता और संवर्धन, गरीबी को कम करने और सतत् संसाधनों के प्रबंधन के लिए एक प्रभावी राष्ट्रीय कार्यनीति की रचना हो। महिलाओं के अधिकारों को सुरक्षित करना या रखना केवल महिला कार्यकर्त्ताओं के लघु समूहों की चिन्ता का विषय नहीं है, बल्कि इनके अलावा सम्पूर्ण विश्व के अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय की जिम्मेदारी है कि महिलाओं को उनको समुचित अधिकार प्राप्त हों और वे सुरक्षित रहें।

- **अर्थव्यवस्था के अन्दर श्रम का विभाजनः** अधिकतर देशों में महिला और पुरुषों को विभिन्न प्रकार से वितरित किया गया है। उत्पादन सम्बन्धी क्षेत्रों, औपचारिक और अनौपचारिक क्षेत्रों, कृषि के और विभिन्न कार्यक्षेत्रों में इन दोनों को विभाजित किया हुआ है। अधिकान्त कम भुगतान वाले कार्यों और "बिना स्तर" के कार्यों में महिलाएँ पाई जाती हैं (अंशकालिक, अस्थायी, घरेलू कार्य) साथ ही उत्पादक संसाधन जैसे कि शिक्षा, कौशलों, सम्पत्ति और लेन-देन में महिलाओं की पहुँच पुरुषों से कम है। इन प्रारूपों का अर्थ है कि आर्थिक प्रवृत्तियों और आर्थिक नीतियाँ के महिलाओं और पुरुषों के लिए अलग-अलग निहितार्थ हैं। उदाहरण के लिए व्यापार उदारीकरण का क्षेत्रवार असंतुलित प्रभाव पड़ा है, इसके जेंडर समानता और आर्थिक संवर्धन दोनों के लिए परिणाम रहे हैं जोकि केवल हाल के दिनों में जाँच का विषय बने हैं।

- **घरेलू/बिना भुगतान के क्षेत्र में असमानताएँः** अधिकतर देशों में महिलाएँ ही हैं जिनके कंधों पर घर की देखभाल और पालनपोषण की जिम्मेदारी होती है। यह घरेलू कार्य महिलाओं के कार्य भार को ओर बढ़ाते हैं जिसके कारण राजनीतिक क्रियाकलापों को करने में बाधा आती है और आर्थिक गतिविधियों को विस्तारित करने में असमर्थता रहती है। हाल के अनुसंधानों ने अर्थव्यवस्था के "जननीय कार्य" और "आर्थिक उत्पादकता" क्षेत्र के बीच के सम्बन्धों को प्रदर्शित किया है विशेष रूप से सभी उत्पादक गतिविधियों की निर्भरता एक स्वस्थ श्रमिक ताकत के जन्म और स्थायित्व में और किस प्रकार जननीय क्षेत्र पर प्रभाव पड़ता है उन आर्थिक नीतियों का जोकि व्यापार, व्यय और नागरिक व्यय से सम्बन्धित है। एक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ है, आर्थिक नीतियों ने जेंडर के संदर्भ में कल्याण को कैसे प्रभावित किया है पर से ध्यान अब जेंडर–कैसे इन्हीं आर्थिक नीतियों के परिणाम को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है।

- **महिलाओं के विरुद्ध हिंसाः** जेंडर असमानता में जेंडर हिंसा भी प्रदर्शित होती है, यह चाहे महिला के अंतरंग मित्र (घरेलू हिंसा) द्वारा की गई हिंसा हो अथवा एक दुश्मन सेना के द्वारा "नृजातीयता सफाया" अथवा उनका यौन शोषण, जैसे युवतियों और महिलाओं का देह व्यापार।

- **विभेदकारी प्रवृत्तियाँ :** जेंडर समानता केवल आर्थिक क्षेत्र में ही नहीं होती है, परंतु यह और अन्य तरीकों से भी की जाती है जिनको मापा नहीं जा सकता, जिनका उपाय नहीं किया जा सकता और उनमें परिवर्तन भी नहीं किया जा सकता है। समुचित व्यवहार, स्वतंत्रता और सहज योग्यता सम्बन्धी विचार प्रायः जेंडर सम्बन्धी घिसी पिटी धारणाओं या आधारों पर टिकी होती हैं और महिलाओं और पुरुषों के लिए अलग-अलग होती हैं। विचार और व्यवहार एक दूसरे को अन्त प्रभावित करते हैं और बलाघात (reinforce) करते हैं। एक दूसरे के लिए तर्क प्रदान करते हैं जोकि परिवर्तन की जटिलताओं की वृद्धि में योगदान देते हैं।

नोटः अ) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये गये स्थान का उपयोग करें।

ब) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलायें।

1) जेंडर समानता को संक्षेप में स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

8.4 पितृसत्ता : जेंडर असमानता की समझ

पितृसत्ता वह व्यवस्थित सामाजिक संरचनाएँ हैं जोकि पुरुषवादी भौतिक, सामाजिक और आर्थिक शक्तियों को महिलाओं के ऊपर लागू करती हैं। कुछ नारीवादी पितृसत्ता की महिलाओं के बृहद और स्थानिक संरचनाओं द्वारा व्यवस्थित अधीनता की व्याख्या के लिए करते हैं। ये संरचनाएँ अवरोधों, महिलाओं के जीवन की पसंदगी और अवसरों पर प्रतिबंध लगाकर पुरुषों को लाभ पहुँचाने का कार्य करते हैं। पितृसत्ता की विभिन्न प्रकारों से व्याख्या की गई है। हालाँकि, पितृसत्ता का स्रोत प्रायः महिलाओं की जनन करने की भूमिका तथा यौनिक हिंसा में है जो पूँजीवाद के शोषण की प्रक्रिया से गुंथी हुई है। पितृसत्ता के दमन के मुख्य स्थलों की पहचान कर ली गई है जैसे कि घरेलू कार्य, भुगतान कार्य, राज्य, संस्कृति, यौनिकता और हिंसा इत्यादि। व्यवहार जोकि महिलाओं के विरुद्ध हैं उनके जेंडर के कारण, उनको पितृसत्ता व्यवहार के रूप में देखा जाता है। उदाहरण के लिए कार्य या काम धन्धों में पृथक्करण और असमान वेतनमान।

पितृसत्ता की संकल्पना का जेंडर और विकास सिद्धान्तिकरण में प्रयोग किया गया है। यह इसलिए ताकि न केवल असमान जेंडर सम्बन्ध अपितु असमान पूँजीवादी सम्बन्धों को चुनौती दी जा सके क्योंकि ये सम्बन्ध पितृसत्ता को सहारा देने या उसकी नींव को मजबूत करने का कार्य करते हुए दिखाई देते हैं। उनको भी चुनौती देने का कार्य है। नारीवादी जो जेंडर असमानता को प्रायः पितृसत्ता की शब्दावली में व्याख्या करते हैं, वे पुरुष-पूर्वाग्रह-सामाजिक संरचना और व्यवहार को अस्वीकार करते हैं तथा महिलाओं की स्वायत्तता को प्रस्तावित करते हैं अथवा कार्यनीति के अनुसार अलगाववाद का भी समर्थन करते हैं। कुछ विचारों के तहत महिलाएँ पुरुष के साथ पितृसत्ता लेन-देन के समझौतों द्वारा विपरीत पितृसत्ता व्यवस्था के अंतर्गत कुशल कार्य साधन युक्ति के रूप में इस्तेमाल करती हैं। इसमें समाहित हैं महिलाओं की स्वायत्तता तथा पुरुषों की अपनी पत्नियों और बच्चों को पालने पोषण की जिम्मेदारी के मध्य एक समझौता। पुरुष शक्ति की एक बृहद सिद्धान्त जेंडर असमानता को विस्तारित कर सकता है। परंतु उसकी जटिलता को समझने में असफल है। यह बताने का प्रयास करती है कि जेंडर शोषण समय और स्थान की सीमाओं से परे सार्वभौमिक है। अभी हाल के चिंतन में ऐसी सार्वभौमिक अवधारण को अस्वीकार कर दिया गया है और जेंडर आधारित शोषण को समझने के लिए विस्तृत ऐतिहासिकता और सांस्कृतिक विश्लेषण पर बल दिया गया है। महिलाएँ पहचान के रूप में कभी भी एक समरूप वर्ग नहीं रही हैं। जेंडर असमानताएँ अन्य सामाजिक असमानताओं के आर-पार बनी हुई हैं जैसे कि वर्ग, जाति, नृजातीयता और नस्ल, और कुछ संदर्भों में जेंडर की

प्राथमिकताओं से यह ऊपर हो सकती हैं। पितृसत्ता की कठोर और सार्वजनिक संकल्पना परिवर्तन के लिए अवरोध और कार्यनीतियों के लिए महिलाओं को उनका स्थान देने के लिए तैयार नहीं हैं। एक गहन विश्लेषण करने की आवश्यकता है जो भिन्नताओं और जटिलताओं को ध्यान में रखकर अध्ययन कार्य करें तथा एक महिलाओं के अभिकरण की स्थापना की माँग करती है।

8.5 पितृसत्ता की उत्पत्ति के सिद्धान्त

पितृसत्ता की उत्पत्ति का प्रमुख सिद्धान्त जैविकी और सामाजिक कारकों को एक साथ मिश्रित करता है यह व्याख्या करने के लिए कि किस प्रकार से पितृसत्ता ने जेंडर भिन्नता को प्रतिपादित किया है।

8.5.1 परम्परावादी विचारधारा

परम्परावादियों का विचार है कि पितृसत्ता व्यवस्था एक जैविक निर्धारण है। पुरुष और महिलाएँ भिन्न तरह से उत्पन्न हुए हैं तथा इसी के परिणामस्वरूप उनकी अलग-अलग भूमिकाएँ और कार्य निर्धारित किए गए हैं। उन दोनों के जैविकी कार्यों में विशेष प्रकार का अन्तर है। इसलिए पुरुष और महिलाओं के "प्राकृतिक" रूप से विभिन्न सामाजिक भूमिकाएँ और कार्य हैं। परम्परावादियों के तर्कों के अनुसार महिलाएँ बच्चों को जन्म देती हैं, इसलिए, उनका मुख्य लक्ष्य जीवन में माँ बनना है और उनका मुख्य कार्य बच्चों को रखना और उनको पालना है। व्याख्याएँ जो जैविकी रूप से पुरुष को श्रेष्ठ मानती हैं और परिवार को चलाने वाले, उनको अस्वीकार किया गया है hunting gathering समाजों पर अनुसंधान के आधार पर। ऐसे समाजों में पुरुषों और महिलाओं के मध्य समुचित मात्रा में एक दूसरे की पूरकता (complementarity) थी। अनेक आदिवासी समाजों में हमें पता लगता है कि यहाँ पर समतावादी विचारधारा का चलन था जिसमें महिलाओं की कमान को आदर से देखा जाता था और उनका समान स्तर था। पुरुष के श्रेष्ठ होने के परम्परावादी सिद्धान्त को अनेकों ने चुनौती दी हैं क्योंकि इसका कोई ऐतिहासिक और न ही वैज्ञानिक साक्ष्य है। यह जैविकी निर्धारण पुरुष की श्रेष्ठता का आधार नहीं बनाया जा सकता है। अब यह सिद्ध हो गया है कि पितृसत्ता सिद्धान्त पुरुष ने बनाया है और इसको ऐतिहासिक प्रक्रियाओं ने की है। पितृसत्ता की उत्पत्ति के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण व्याख्या फ्रेडेरिक एन्जेल्स ने सन् 1884 में अपनी पुस्तक *"ओरिजिन्स ऑफ फैमिली, प्राइवेट प्रोपर्टी एंड स्टेट"* में दिया है। एन्जेल्स का कहना है कि महिलाओं की अधीनता का आरंभ निजी सम्पत्ति के साथ आरंभ हुआ जब विश्व में महिला जेंडर की ऐतिहासिक रूप से मात हुई। वर्गों का विभाजन और महिलाओं की अधीनता, दोनों ही ऐतिहासिक रूप से हुए हैं।

8.5.2 परिवर्तनकारी नारीवादी विचारधारा

परिवर्तनकारी नारीवादी विचारों के अनुसार पितृसत्ता निज़ी सम्पत्ति से पूर्व आई। ये विश्वास करते हैं कि मूल विरोधाभास लिंगों के बीच है, न कि वर्गों के। परिवर्तनकारी नारीवादी यह मानते हैं कि सभी महिलाएँ एक वर्ग हैं और यह विश्वास नहीं करते हैं कि पितृसत्ता व्यवस्था प्राकृतिक है। हालाँकि वे यह भी कहते हैं कि जेंडर असमानता को पुरुषों और महिलाओं के मध्य जैविकी अथवा मनोवैज्ञानिक भेदों के आधार पर स्पष्ट कर सकते हैं। शुलामिथ फायरस्टोन का विश्वास है कि महिलाओं के दमन का मूल आधार महिलाओं की जनन क्षमता के आधार पर है अभी तक पुरुष इस पर नियंत्रण बनाए हुए हैं। कुछ परिवर्तनकारी नारीवादी विद्वानों के अनुसार, सामाजिक वर्गों की व्यवस्था दो प्रकार की है जो निम्नलिखित हैं:

1) आर्थिक वर्ग व्यवस्था जोकि उत्पादनों के सम्बन्धों पर आधारित है; और

2) यौनिक वर्ग व्यवस्था जोकि जनन प्रक्रिया पर आधारित है।

यह व्यवस्था जोकि यौन पर आधारित है महिलाओं की अधीनता के लिए उत्तरदायित्व है। पितृसत्ता की संकल्पना इस द्वितीय वर्गों की व्यवस्था वर्गों की वर्ग व्यवस्था दूसरे वर्ग की संदर्भित करती है जिसमें पुरुषों द्वारा महिलाओं पर शासन किया जाता है और इसका आधार पुरुषों द्वारा महिलाओं की जनन क्षमता का स्वामित्व और नियंत्रण होता है। इसके परिणामस्वरूप महिलाएँ शारीरिक तथा मनोवैज्ञानिक रूप से पुरुषों पर निर्भर हो गई हैं। यह नारीवादी यह भी कहते हैं कि यह अपने आप में महिलाओं की जैविकी नहीं है, बल्कि पुरुष के जो मूल्य इन पर लागू हैं और जो शक्ति उनको इस जैविकी पर नियंत्रण से प्राप्त होती है, वह दमनकारी है।

8.5.3 समाजवादी विचारधारा

समाजवादी नारीवादी मार्क्सवादी और परिवर्तनकारी नारीवादी मत को एक साथ जोड़ते हैं। ये ऐसा महसूस करते हैं कि दोनों उठाए गए बिन्दु एक-दूसरे को कुछ योगदान करते हैं, परन्तु दोनों में से कोई स्वयं में समुचित नहीं हैं। पितृसत्ता व्यवस्था उनके लिए सार्वभौमिक नहीं और न ही अपरिवर्तनीय है। इनका विचार है कि महिलाओं और पुरुषों के बीच जो संघर्ष है यह उत्पादन की प्रणालियों में परिवर्तन के साथ ऐतिहासिक रूप से परिवर्तित हो जाएँगे। उनके अनुसार पितृसत्ता आर्थिक व्यवस्था के साथ सम्बन्धित हैं जिसका सम्बन्ध उत्पादन की प्रक्रिया की प्रकृति से जुड़ा है, परंतु यह आकस्मिक रूप से संबन्धित नहीं है। कई अनेक कारक पितृसत्ता को बलपूर्वक प्रभावित करते हैं जैसे कि विचारधारा। चूँकि पितृसत्ता व्यवस्था केवल निजी सम्पत्ति के विकास के परिणामस्वरूप नहीं है, अतः यह तब भी अदृश्य नहीं होगी जब निजी सम्पत्ति की व्यवस्था समाप्त हो जाएगी। वे अपने विश्लेषणों में उत्पादन तथा जनन प्रक्रिया के सम्बन्धों यानी दोनों को देखते हैं। मार्क्सवादी विद्वान जनन प्रक्रिया, परिवार तथा घरेलू श्रम के सभी क्षेत्रों को नकारते हैं। समाजवादी महिलावादियों में प्रमुख विद्वान हैं हाइडी हार्टमैन, मारिया माइस और जेरडा हार्नर शामिल हैं।

बोध प्रश्न 3

नोटः अ) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये गये स्थान का उपयोग करें।

ब) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलायें।

1) पितृसत्ता की उत्पत्ति पर परिवर्तनकारी महिलावादियों के क्या विचार हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

8.6 जेंडर : संकल्पना और सिद्धान्त

जेंडर की संकल्पना सन् 1970 के दशक के आरंभ में सामान्य बोलचाल भाषा में हमारे सामने आईं। इसका प्रयोग एक विश्लेषणात्मक श्रेणी के तौर पर हुआ था जोकि जैविकी यौन और वे तरीके जिनसे यह व्यवहार तथा विभिन्न योग्यताओं को निर्धारित करती हैं,

उनके मध्य विभाजन की रेखा खींचती हैं। तदुपरांत, इन व्यवहारों और योग्यताओं को "पुरुषवादी" अथवा "नारीवादी" माना गया। लिंग/जेंडर में अन्तर करने के लिए यह तर्क दिया जाता था कि जैविक अन्तर का शारीरिक या मानसिक प्रभाव बढ़ा-चढ़ा कर पेश किया गया था पितृसत्ता व्यवस्था को बनाए रखने के लिए महिलाओं में यह भावना जागृत करने के लिए कि ये "घरेलू" भूमिका को निभाने के लिए प्राकृतिक रूप से उपयुक्त हैं। एन्न ऑकले की पुस्तक *टेक्सट, सेक्स, जेंडर एंड सोसाइटी* (1972) में उन्होंने जेंडर के निर्माण के आगे विस्तार के लिए आधारशिला रखी थी। उन्होंने टिप्पणी की है कि पश्चिमी संस्कृतियाँ जेंडर भिन्नताओं को अतिशयोक्ति पूर्ण उजागर करती हैं तथा तर्क रखती है कि हमारी वर्तमान जेंडर भूमिका की सामाजिक दक्षता महिलाओं की घरेलू महिला और माँ के रूप में केन्द्रित है। यह पहली बार नहीं हुआ था जब ऐसा विभेद किया गया – वास्तव में वे मानव विज्ञान (Anthropology), मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और मेडिकल शोध का तत्वी रहे हैं, महत्वपूर्ण रूप से नारीवाद के लिए। सीमोन द बीबोआर ने इस अन्तर को अपनी पुस्तक *सेकण्ड सेक्स* में दो दशक पूर्व उजागर किया था जब उन्होंने कहा था कि "कोई पैदा नहीं अपितु महिला बनती है।"

8.6.1 नारीवादी सिद्धान्त

नारीवादी सिद्धान्त का उद्देश्य जेंडर असमानता को समझाना और जेंडर राजनीति, शक्ति सम्बन्ध तथा यौनिकता पर प्रकाश डालना है। जबकि इन सामाजिक और राजनीतिक सम्बन्धों की आलोचना उपलब्ध कराते हैं, नारीवादी सिद्धान्त महिलाओं के अधिकारों और उनके हितों पर प्रकाश डालता है। नारीवादी सिद्धान्त में जिन विषयों को समाहित किया जाता है उनमें भेदभाव या शोषण, रूढ़िबद्ध या घिसा-पिटा विवरण, विषय निर्माण (विशेषकर यौनिक विषयकरण करना) दमन और पितृसत्ता शामिल हैं। नारीवाद पुरुष और महिलाओं की सामाजिक समानता का समर्थन करता है तथा यौनवाद और पितृसत्तावाद के विरूद्ध हैं। नारीवादी शब्द का प्रयोग एक ऐसे राजनीतिक, सांस्कृतिक या आर्थिक आन्दोलन के लिए किया जा सकता है जिसका उद्देश्य महिलाओं के लिए समान अधिकार और कानूनी संरक्षण कराना है। नारीवाद में राजनीतिक और समाजशास्त्रीय सिद्धान्त सम्मिलित हैं और वे दर्शन जोकि जेंडर विभेद और एक ऐसे आन्दोलन इसी प्रकार से आन्दोलन से सम्बन्धित हैं जोकि महिलाओं के लिए जेंडर समानता का समर्थन करते हैं और महिलाओं के अधिकारों और उनके हितों के लिए अभियानों का आयोजन करते हैं। "नारीवाद" तथा "नारीवादी" शब्दों का सन् 1970 के दशक तक विस्तृत प्रयोग नहीं हुआ था। सन् 1840 के दशक में पहली बार नारीवाद के चिन्ह नज़र आए थे जब महिलाओं की पीड़ा का विरोध हुआ और अफ्रीकी स्रोत अमरीकियों के लोग इन विरोधों के अन्त में सन् 1920 में वे मताधिकार प्राप्त करने में विजयी हुए, परन्तु समाज में जेंडर समानता में अभी तक दोषपूर्ण स्थिति बनी हुई है। नारीवादी समाज में अनेक मुद्दों के विरूद्ध हैं, हालाँकि वे मुख्य/पाँच विषयों पर अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं। ये निम्न प्रकार हैं:

- समाज में समानता की वृद्धि करने के लिए कार्य करना;
- समाज में लोगों के विकल्पों के लिए व्यापक क्षेत्रों का निर्माण करना; उनका सुझाव है कि मानवता का पुनःएकीकरण किया जाए;
- जेंडर स्तर विन्यास को नष्ट करना;
- यौनिक हिंसा को समाप्त करना;
- यौनिक स्वतंत्रता को प्रोत्साहित करना।

नारीवाद के इतिहास को तीन लहरों में विभाजित किया जा सकता है। नारीवाद की प्रथम लहर उन्नीसवीं और आरम्भिक बीसवीं शताब्दी में आई थी और दूसरी लहर सन् 1960 के दशक से सन् 1970 के दशक तक थी और तीसरी लहर सन् 1990 के दशक से लेकर वर्तमान तक पहुँच चुकी है। प्रथम लहर मुख्य रूप से उन्नीसवीं और आरंभिक बीसवीं शताब्दी की रही है, जिसमें महिलाओं के लिए मताधिकार की माँग करने के लिए आन्दोलन चलाए थे (मुख्य रूप से महिलाओं को मताधिकार देने से सम्बन्धित थी)। दूसरी लहर सन् 1960 के दशक में आरंभ में हुईं जो मुख्य रूप से महिलाओं की स्वतंत्रता के आन्दोलन के साथ विचारों तथा कार्यों के एक साथ जोड़ने से सम्बन्धित थी (जब महिलाओं के लिए कानूनी एवं सामाजिक अधिकारों के लिए अभियान चलाए गए थे)। तीसरी लहर का संदर्भ है, दूसरी लहर की विफलताओं का जारी रहना और इन विफलताओं के प्रति प्रतिक्रिया जिसका आरंभ सन् 1990 के दशक में हुआ। नारीवाद ने पश्चिमी समाज में एक व्यापक क्षेत्र को समाहित करते हुए पूर्व अधीनस्थ परिप्रेक्ष्य को परिवर्तित किया। इसकी सीमाएँ संस्कृति से कानून तक पहुँच गई थी। नारीवादी कार्यकर्त्ताओं ने महिलाओं के कानूनी अधिकारों के लिए अभियानों का संचालन कर रहे थे (संविदा, सम्पत्ति का अधिकार, मत देने का अधिकारों)। महिलाओं की शारीरिक स्वायत्तता और अस्मिता का अधिकार, गर्भपात कराने का अधिकार तथा प्रजनन सम्बन्धी अधिकार (इसमें गर्भनिरोधक तथा प्रसवपूर्व देखभाल की गुणवत्ता की पहुँच को सम्मिलित किया था)। महिलाओं और बालिकाओं या लड़कियों को घरेलू हिंसा से बचाने के लिए संरक्षण देना, यौनिक उत्पीड़न और बलात्कार को रोकना, कार्य स्थल के अधिकार जिसमें प्रसव अवकाश तथा समान वेतन, महिला द्विवेश एवं अन्य होने वाले भेदभाव जो कि जेंडर-विशिष्ट उत्पीड़न स्वरूपों के विरूद्ध आन्दोलन चलाए गए।

8.6.2 उदारवादी नारीवाद

उदारवाद नारीवाद राजनीतिक और कानूनी सुधारों के माध्यम से पुरुषों और महिलाओं की समानता के अधिकारों को दिलाने के लिए प्रयास करता है। यह नारीवाद का जोकि महिलाओं की अपने कार्यों और विकल्पों के माध्यम से एक समानता हासिल करने की क्षमता पर ध्यान देता है। उदारवादी नारीवादी पुरुषों और महिलाओं के बीच अन्तर्क्रिया को उस स्थान (बिन्दु) के तौर पर इस्तेमाल करते हैं, जहाँ से समाज को बदला जा सकता है। उदारवादी नारीवादियों के अनुसार सभी महिलाएँ समानता को प्राप्त करने की योग्यता रखती हैं और वे इसके लिए पूरी तरह से सक्षम हैं; इसलिए समाज की संरचना को बदलने की आवश्यकता नहीं है। उदारवादी नारीवादियों के लिए कुछ बहुत ही महत्वपूर्ण मुद्दे हैं जिनमें प्रजनन और गर्भपात अधिकार, यौन सम्बन्धी उत्पीड़न, मतदान, शिक्षा, "समान कार्य के लिए समान वेतन", सामर्थ्य अनुसार स्वास्थ्य देखभाल और महिलाओं के विरूद्ध होने वाली यौनिक और घरेलू हिंसा के विरूद्ध मामलों को लगातार लोगों के सामने लाने के प्रयासरत रहना है।

8.7 सारांश

जेंडर की संकल्पना की उत्पत्ति महिलाओं के हाशिएकरण के प्रति एक प्रतिक्रिया के रूप में हुई, जो हाशियाकरण वर्तमान आलोचनात्मक संदर्भों में था और इसने ठोस संदर्भों और इन विषयों के ज्ञान के दार्शनिक सिद्धान्त को बदलने का प्रयास किया। समाज विज्ञान में सहजभाव से जाति, वर्ग और नस्ल की शब्दावली में विश्लेषण करने की परम्परा है, किन्तु यह समुचित पर्याप्त नहीं हुआ है क्योंकि इसमें पुरुषों और महिलाओं के बीच जो असामंजस्य था उसे नकारा गया। इस शब्दावली की उत्पत्ति नई श्रेणियों को चुनौती देने और समझ के नए तरीकों का पता लगाने में हुई ताकि पुरुष-महिलाओं के सम्बन्धों की प्रकृति एवं उनके

संगठनों की जानकारी प्राप्त की सके और इसकी भी कि व्यापक शक्ति सम्बन्धों के संदर्भ में कैसे एक दूसरे से घुले मिले हैं। अतः जेंडर से सम्बन्धित महिलाओं के जीवन के विभिन्न पहलुओं पर अनेक अध्ययन किए गए हैं परन्तु इनका वर्तमान विश्लेषण प्रतिमान से अंतःसम्बन्ध इसके एक जटिल मुद्दा है। आज, यद्यपि जेंडर एक प्रमुख विश्लेषणात्मक श्रेणी के रूप में उभरा हुआ है, यह एक व्याख्यात्मक दृष्टिकोण से चिह्नित हैं। केवल कुछ ही प्रश्न थोड़े से तरीकों से उठाए जा सकते हैं। एक ऐसा उदाहरण है जेंडर का असमानता के साथ सार्वभौमिक सम्बन्ध जहाँ जेंडर को दोनों लिंगों का एक coterminus द्वंद्व माना गया है और पितृसत्ता से आगे। जेंडर के समाजशास्त्र का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य रहा है, यह सामाजिकता से संबद्ध हैं, यह स्थापित करना कि असमानता को चुनौती दी जा सकती है क्योंकि वह समाज प्रक्रिया का परिणाम है, न कि "प्राकृतिक" शारीरिक भिन्नता। नारीवाद और समाज विज्ञान विद्वानों में बीसवीं शताब्दी के अन्त में प्रवृत्ति उन्होंने थी कि उनकी "प्राकृतिक शारीरिक जैविक रचना है पर सांस्कृतिक जेंडर अर्थ को स्थापित किया। इसके पश्चात्, विशेषकर मिशेल फूको के प्रभाव में यह जागरूकता सांस्कृतिक अर्थ तथा व्यवहार वास्तव में विशेष प्रकारों से शरीर उत्पन्न करते हैं।

8.8 संदर्भ

बकिंगहम, हार्टफील्ड, सूज़न (2000), *जेंडर एंड एनवायरमेंट,* न्यूयॉर्कः रूटलैज

डेली, मेरी (1978), *जिन इकोलॉजी : द मेटाएथिक्स ऑफ रैडिकल फेमिनिज़्म,* बोस्ट प्रेस

डैनहीमैन, आईरिन (2010), *जेण्डर एंड क्लाइमेंट चेंजः एन इंट्रोडक्शन,* न्यूयॉर्कः रूटलैज।

द बोबाओयर एस. (1949) *द सेकण्ड सेक्स,* जैग्गर, एलीसन एम. एवं सूज़न आर. बोर्डो, (संपा.), (1899) *जेण्डर बॉडी नॉलेज, फेमिनिस्ट रिकंस्ट्रक्शन्स ऑफ बीईंग एंड नोविंग,* न्यू ब्रस्विक, एन.जे.: रूटजर्स यूनिवर्सिटी प्रेस।

जैग्गर, एलीसन एम. एवं सूज़न आर. बोर्डो, (संपा.), (1899) *जेण्डर बॉडी नॉलेज, फेमिनिस्ट रिकंस्ट्रक्शन्स ऑफ बीईंग एंड नोविंग,* न्यू ब्रस्विक, एन.जे.: रूटजर्स यूनिवर्सिटी प्रेस।

जैग्गर, एलीसन एम. (संपा.), (2014) *जेण्डर एंड ग्लोबल जस्टिस, माल्डेन, एस. ए. :* पॉलिटी प्रेस।

ज़ाक्केत, जेन एस. एवं गेल सम्भरफील्ड (संपा.), (2006), *विमिन एंड जेण्डर इक्विटी इन डेवलेपमेंट थ्योरी एंड प्रैक्टिसः इंस्टीट्यूशंस, रिसोर्सेज एंड मोबिलाइज़ेशन,* डूर्हम एंड लंदनः ड्यूक यूनिवर्सिटी प्रेस।

केल्लर, एवीलिन फौक्स (1995), *रिफ्लेक्शन्स ऑन जेण्डर एंड साईन्स,* न्यू हेवन, कौन्नः येल यूनिवर्सिटी प्रेस।

क्रिजनेन, टौन्नी, वैन बानबेल, सोफी (2015), *जेण्डर एंड मीडिया : रिप्रेजेंटिंग, प्रोडयूसिंग, कंज्यूमिंग,* न्यूयॉर्कः रूटलेज।

8.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आप अपने उत्तर में सामाजिक-सांस्कृतिक आयाम और ऐन्न ऑक्ले द्वारा दी गई परिभाषा को सम्मिलित कीजिए।

बोध प्रश्न 2

1) प्रकाश डालिए कि जेंडर असमानता का अर्थ है कि अधिकार, जिम्मेदारियाँ और व्यक्ति के अवसर की उपलब्धता इस पर निर्भर नहीं करेगी की वह पुरुष अथवा महिला पैदा हुआ है।

बोध प्रश्न 3

1) परिवर्तनकारी नारीवादी यह विश्वास नहीं करते हैं कि पितृसत्ता प्राकृतिक नहीं है और जेंडर असमानता की पुरुष और महिलाओं के बीच जैविकी तथा मनोवैज्ञानिक के भेदों के संदर्भ में व्याख्या की जा सकती है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 9 नागरिकता*

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 परिचय

9.2 नागरिकता की अवधारणा

9.2.1 निर्धारक तत्त्व

9.3 नागरिकता की अवधारणा का विकास

9.4 नागरिकता के सिद्धांत

9.4.1 उदारवादी सिद्धांत

9.4.2 गणतंत्रतावादी सिद्धांत

9.4.3 मुक्तिवादी सिद्धांत

9.4.4 समुदायवादी सिद्धांत

9.4.5 मार्क्सवादी सिद्धांत

9.4.6 बहुलतावादी सिद्धांत

9.4.7 नारीवादी परिप्रेक्ष्य

9.4.8 गांधी के विचार

9.5 वैश्विक नागरिकता का विचार

9.6 सारांश

9.7 संदर्भ

9.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

9.0 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य नागरिकता के अर्थ को समझना और इस अवधारणा से जुड़े कुछ महत्वपूर्ण सैद्धांतिक मुद्दों को संबोधित करना है। जैसे जैसे आप इस इकाई में आगे बढ़ेंगे, आप निम्न को समझने में सक्षम होंगेः

- नागरिकता की अवधारणा की व्याख्या;
- नागरिकता के कुछ मूल सिद्धांतों पर चर्चा; तथा
- नागरिकता से संबंधित विभिन्न सिद्धांतों की व्याख्या।

9.1 परिचय

सामान्य शब्दों में, नागरिकता एक व्यक्ति और राज्य के बीच का संबंध है। इसे पूरक अधिकारों और जिम्मेदारियों के संदर्भ में देखा जाता है। टी एच मार्शल के अनुसार, 'नागरिकता एक राजनीतिक समुदाय में 'पूर्ण और समान सदस्यता है।' नागरिकता के शुरुआती रूप प्रकृति में सीमित और बहिष्कृत थे, क्योंकि जिनके पास संपत्ति थी, उन्हें ही नागरिकता के अधिकार दिए गए थे। महिलाओं और दासों को इन अधिकारों से बाहर रखा

* डॉ. सुरिन्दर कौर शुक्ला, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

गया था। यह आधुनिक उदार राज्यों के आगमन के साथ था कि समानता की मांग ने गति पकड़ी और हाशिए के वर्गों के सामाजिक-आर्थिक समावेश के लिए, नागरिकता के अधिकार उन्हें प्रदान किए गए। एक लोकतंत्र में सुधार के लिए, नागरिकों को शासन में सक्रिय भाग लेना चाहिए जो जवाबदेही सुनिश्चित करता है। निष्क्रिय नागरिकता किसी भी लोकतंत्र में गतिरोध पैदा कर सकती है और प्रतिनिधियों में नागरिकों के प्रति जवाबदेही न होने के कारण 'पराया' होने का एहसास लाती है। वैश्वीकरण के कारण पश्चिम में कल्याणकारी नीतियों, रक्षा बजटों में वृद्धि, राज्य द्वारा डिजिटल निगरानी बढ़ाने, कमजोर वर्गों के हाशिए पर जाने, पर्यावरण संबंधी चिंताओं और बहुसांस्कृतिक दबाव जैसे कई कारकों ने नागरिकता की अवधारणा के आसपास बहस को गरमा दिया है।

9.2 नागरिकता की अवधारणा

नागरिकता किसी व्यक्ति या संप्रभु राज्य के कानूनी सदस्य या राष्ट्र के अंग के रूप में मान्यता प्राप्त व्यक्ति या कानून के तहत मान्यता प्राप्त व्यक्ति की स्थिति है। एक व्यक्ति के पास कई नागरिकताएं हो सकती हैं और एक व्यक्ति जिसके पास किसी भी राज्य की नागरिकता नहीं है, को राज्यविहीन कहा जाता है। 'नागरिक' शब्द को संकीर्ण या व्यापक अर्थों में समझा जा सकता है। संकीर्ण अर्थ में, इसका अर्थ है एक शहर का निवासी या वह व्यक्ति जो किसी शहर में रहने का विशेषाधिकार प्राप्त करता है। जबकि एक व्यापक अर्थ में, नागरिक का अर्थ है एक व्यक्ति जो राज्य की क्षेत्रीय सीमाओं के भीतर रहता है। नागरिकता और राष्ट्रीयता कानूनी अर्थों में एक समान हैं। वैचारिक रूप से, नागरिकता राज्य के आंतरिक राजनीतिक जीवन पर केंद्रित है और राष्ट्रीयता अंतर्राष्ट्रीय व्यवहार का विषय है। आधुनिक युग में, पूर्ण नागरिकता की अवधारणा न केवल सक्रिय राजनीतिक अधिकारों, बल्कि पूर्ण नागरिक और सामाजिक अधिकारों को शामिल करती है। ऐतिहासिक रूप से, एक राष्ट्रीय और एक नागरिक के बीच सबसे महत्वपूर्ण अंतर यह है कि नागरिक को निर्वाचित अधिकारियों को वोट देने और निर्वाचित होने का अधिकार है। पूर्ण नागरिकता और अन्य छोटे संबंधों के बीच यह अंतर, प्राचीन काल में वापस ले जाता है। 19वीं और 20वीं शताब्दी तक, यह केवल उन लोगों के एक छोटे प्रतिशत के लिए विशिष्ट था जो किसी शहर या राज्य के पूर्ण नागरिक होने से संबंधित थे। अतीत में, अधिकांश लोगों को लिंग, वर्ग, जातीयता, धर्म या अन्य कारकों के आधार पर नागरिकता से बाहर रखा गया था।

नागरिकता से जुड़े तीन प्रकार के अधिकार हैं– नागरिक, राजनीतिक और सामाजिक। नागरिक अधिकार व्यक्तिगत स्वतंत्रता जैसे स्वतंत्रता, भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता आदि से संबंधित हैं। इन अधिकारों को राज्य के खिलाफ शक्ति के रूप में देखा जा सकता है क्योंकि वे लोकतंत्र में असंतोष को सुरक्षित रखते हैं। राजनीतिक आयाम में राजनीतिक अधिकार शामिल हैं जिसके माध्यम से एक व्यक्ति अपने देश के राजनीतिक जीवन में भाग लेता है, जैसे मतदान का अधिकार; किसी भी राजनीतिक दल के गठन या उससे जुड़ने का अधिकार आदि। ये अधिकार लोकतंत्र में संसदीय संस्थाओं से जुड़े हैं। सामाजिक आयाम सामाजिक और सांस्कृतिक विरासत को साझा करने के अधिकार को संदर्भित करता है। दूसरे विश्व युद्ध के बाद कल्याणकारी राज्य का विचार मजबूत हुआ और अपने नागरिकों के बीच असमानताओं को दूर करने के लिए न्यूनतम जीवन स्तर की गारंटी देना राज्य का कर्तव्य माना गया है। नागरिक और सामाजिक अधिकारों के बीच एक तनाव का रिश्ता रहा है जहां नागरिक अधिकारों को सामाजिक अधिकारों से ज्यादा महत्व दिया जा रहा है।

9.2.1 निर्धारक तत्त्व

प्रत्येक देश की अपनी नीतियां, नियम और मानदंड होते हैं जो उसकी नागरिकता के लिए जरूरी होते हैं। एक व्यक्ति को कई आधारों पर मान्यता या नागरिकता दी जा सकती है। आमतौर पर जन्म स्थान के आधार पर नागरिकता स्वचालित होती है; अन्य मामलों में एक आवेदन की आवश्यकता हो सकती है। नागरिक दो प्रकार के होते हैं: प्राकृतिक जन्म नागरिक और स्वाभाविक नागरिक। प्राकृतिक जन्म नागरिक वे होते हैं जो अपने जन्म या रक्त संबंधों के आधार पर किसी राज्य के नागरिक होते हैं। स्वाभाविक नागरिक वे विदेशी हैं जिन्हें संबंधित देश द्वारा निर्धारित कुछ शर्तों की पूर्ति करने पर देश की नागरिकता प्रदान की जाती है। एक व्यक्ति जो एक विदेशी देश का नागरिक बनने की इच्छा रखता है, उसे अपने मूल देश की नागरिकता छोड़नी होगी। कोई भी व्यक्ति इस उद्देश्य के लिए उस देश द्वारा निर्धारित शर्तों को पूरा करने के बाद किसी दूसरे देश की नागरिकता प्राप्त कर सकता है।

- जन्मजात नागरिकता (Jus Sanguinis) – यदि किसी व्यक्ति के माता-पिता दोनों या उनमें से कोई एक पहले से सम्बंधित राज्य के नागरिक हैं, तो जन्म लेनेवाले व्यक्ति को उस राज्य का नागरिक होने का भी अधिकार है। राज्य आम तौर पर राज्य के बाहर पैदा होने वाली पीढ़ियों की एक निश्चित संख्या के आधार पर नागरिकता देते हैं। नागरिक कानून के देशों में नागरिकता का यह रूप आम नहीं है।

- एक देश के भीतर जन्में (Jus Soli)– कुछ लोग स्वतः रूप से उस राज्य के नागरिक होते हैं जिसमें वे पैदा होते हैं। नागरिकता का यह रूप इंग्लैंड में उत्पन्न हुआ, जहां जो लोग दायरे में पैदा हुए थे, वे सम्राट के नागरिक थे। आम कानून वाले देशों में इस प्रकार की नागरिकता आम हैं।

- विवाह द्वारा नागरिकता – एक नागरिक के लिए एक व्यक्ति के विवाह पर आधारित प्रक्रिया को स्वाभाविक बनाने के लिए कई देशों ने फास्ट ट्रैक की स्थापना की। जो देश इस प्रकार से नागरिकता देते हैं, वहाँ अक्सर झूठे विवाहों की शिकायतें मिलती हैं और उन्हें पकड़ने के लिए नियम बनाते हैं।

- प्राकृतिककरण– राज्य आम तौर पर उन लोगों को नागरिकता प्रदान करते हैं जिन्होंने कानूनी रूप से देश में प्रवेश किया है और उन्हें रहने के लिए अनुमति दी गई है, या राजनीतिक शरण दी गई है, और एक निर्दिष्ट अवधि के लिए वहां रहते हैं। कुछ देशों में, प्राकृतिककरण उन स्थितियों के अधीन होता है, जिनमें भाषा का सही ज्ञान या मेजबान देश के जीवन के तरीके, अच्छे आचरण और नैतिक चरित्र का प्रदर्शन करना शामिल हो सकता है, अपने नए राज्य या उसके शासक के प्रति निष्ठा की वकालत करना और उनकी पूर्व नागरिकता का त्याग प्राकृतिककरण में शामिल है। कुछ राज्य दोहरी नागरिकता की अनुमति देते हैं और किसी भी अन्य नागरिकता को औपचारिक रूप से त्यागने के लिए प्राकृतिक नागरिकों की आवश्यकता नहीं होती है।

अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ में, एक विदेशी और नागरिक के बीच एक विशिष्ट अंतर है। एक नागरिक अपने देश में नागरिक और राजनीतिक अधिकारों का आनंद लेता है। दूसरी ओर, एक विदेशी को, देश के राजनीतिक अधिकारों का आनंद लेने के लिए विशेषाधिकार प्राप्त नहीं है, लेकिन केवल नागरिक अधिकारों जैसे जीवन और धर्म का अधिकार प्राप्त होता है।

नोटः अ) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये गये स्थान का उपयोग करें।

ब) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलायें।

1) नागरिकता से जुड़े अधिकारों के तीन प्रकार बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

9.3 नागरिकता की अवधारणा का विकास

नागरिकता की प्राचीन अवधारणा के लिए हमें ग्रीक शहर-राज्यों को समझना होगा, जहां आबादी को दो वर्गों में विभाजित किया गया था– नागरिक और दास। नागरिकों ने, दोनों ही, नागरिक और राजनीतिक अधिकारों का आनंद लिया। उन्होंने राज्य के नागरिक और राजनीतिक जीवन के सभी कार्यों में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से भाग लिया। जबकि दासों ने इस तरह के किसी भी अधिकार का आनंद नहीं लिया और सभी प्रकार की राजनीतिक और आर्थिक अधिकारों से वंचित रहे। यहां तक कि महिलाओं को नागरिकता के अधिकार नहीं दिए गए थे, जो "केवल-मुक्त मूल-जन्में पुरुषों" के लिए आरक्षित थे। प्राचीन ग्रीस में इस तरह से, 'नागरिक' शब्द का इस्तेमाल संकीर्ण अर्थों में किया गया था। केवल वे जो नागरिक और राजनीतिक अधिकारों का आनंद लेते थे और जिन्होंने लोगों के नागरिक और राजनीतिक जीवन के कार्यों में भाग लिया, उन्हें नागरिक माना गया। प्राचीन रोम में इसी तरह की प्रक्रिया का पालन किया गया था, जहां केवल अमीर वर्ग के लोग, जिन्हें पेट्रीशियन (अभिजात वर्ग सम्बन्धी) कहा जाता था, केवल उन्हें ही नागरिक और राजनीतिक अधिकारों का आनंद लेने के लिए विशेषाधिकार प्राप्त थे। राज्य के नागरिक और राजनीतिक जीवन के कार्यों में केवल पैट्रिशियन ने भाग लिया। इस तरह के किसी भी अधिकार का आनंद लेने के लिए बाकी आबादी विशेषाधिकार प्राप्त नहीं थी। नागरिकों को नैतिक गुणों को विकसित करने की आवश्यकता थी, जो कि लैटिन शब्द 'सद्गुणों' (virtues) से लिया गया एक शब्द है, जिसका अर्थ है पुरुषार्थ जो कि सैन्य कर्तव्य, देशभक्ति, और कर्तव्य और कानून के प्रति समर्पण के अर्थ में लिया जाता है। मध्यकाल में, नागरिकता राज्य द्वारा सुरक्षा से जुड़ी हुई थी क्योंकि पूर्ण राज्य अपनी विविध जनसंख्या पर अपनी सत्ता को लागू करना चाहते थे। यह हॉब्स और लॉक जैसे सामाजिक अनुबंध सिद्धांतकारों के साथ जुड़ी परंपरा में था, जो मानते थे कि व्यक्तिगत जीवन और संपत्ति की रक्षा करना संप्रभु का मुख्य उद्देश्य है। यह नागरिकता की एक निष्क्रिय सोच थी क्योंकि व्यक्ति सुरक्षा के लिए राज्य पर निर्भर था। इस धारणा को 1789 में फ्रांसीसी क्रांति द्वारा चुनौती दी गई थी और 'मनुष्य और नागरिकों के अधिकारों की घोषणा' में, नागरिक को स्वतंत्र और स्वायत्त व्यक्ति के रूप में वर्णित किया गया था। नागरिकता की आधुनिक धारणा स्वतंत्रता और समानता के बीच संतुलन बनाने से सम्बंधित है। सकारात्मक कार्रवाई के माध्यम से समानता की स्थिति प्रदान करके जाति, वर्ग, लिंग आदि जैसी असमानताओं को समाप्त किया जा रहा है।

9.4 नागरिकता के सिद्धांत

निम्नलिखित सिद्धांतों को विभिन्न विद्वानों द्वारा नागरिकता पर प्रस्तुत किया गया है।

9.4.1 उदारवादी सिद्धांत

इस सिद्धांत के अनुसार, नागरिक अधिकार नागरिकता की नींव स्थापित करते हैं और यह व्यक्तिवाद की धारणा के आसपास घूमता है। नागरिकता एक कानूनी स्थिति है, जो राज्य के हस्तक्षेप से उसे बचाने वाले व्यक्ति पर कुछ निश्चित अधिकार प्रदान करती है। टी. एच. मार्शल ने अपनी पुस्तक 'सिटिजनशिप एंड सोशल क्लास' में 1950 में प्रकाशित होने के बाद ब्रिटेन में नागरिकता के विकास का पता लगाया। उन्होंने नागरिकता को तीन तत्वों में विभाजित किया है – नागरिक, राजनीतिक और सामाजिक। स्वतंत्रता के लिए आवश्यक अधिकार नागरिक के अंतर्गत आते हैं, राजनीतिक तत्त्व राजनीति में भाग लेने का अधिकार में शामिल है जबकि सामाजिक अधिकार आर्थिक कल्याण और सुरक्षा के अधिकार को समाहित करते हैं। मार्शल का मानना था कि सामाजिक अधिकार नागरिक और राजनीतिक अधिकारों का आधार हैं। उनका विकास विभिन्न अवधियों में हुआ है – सिविल (18वीं शताब्दी), राजनीतिक (19वीं शताब्दी) और 20वीं सदी में सामाजिक अधिकारों का विकास हुआ। उन्होंने तर्क दिया कि नागरिक अधिकार व्यक्तियों को 'समान नैतिक मूल्य' देते हैं, परन्तु वे निरर्थक होंगे जब तक उन्हें सामाजिक अधिकारों का समर्थन नहीं मिलता क्यूंकि सामाजिक अधिकार 'सामान सामाजिक मूल्य' का समर्थन करते हैं। उदाहरण के लिए, बोलने की स्वतंत्रता के अधिकार का बहुत कम मूल्य हो जाता है यदि किसी के पास शिक्षा की कमी के कारण कहने के लिए कुछ भी उचित नहीं है। नागरिकता समानता की बात करती है जबकि पूंजीवाद वर्ग असमानताओं को जन्म देता है। इसीलिए, मार्शल ने राज्य को कम से कम जीवन स्तर (सामाजिक सुरक्षा) सुनिश्चित करके जरूरतमंद लोगों की देखभाल के लिए कल्याणकारी कार्य सौंपे। सच्ची उदार परंपरा की तरह, मार्शल ने असमानता को खत्म करने की कोशिश नहीं की, बल्कि इसे कम करने की कोशिश की। जॉन रॉल्स ने भी समाज के कम से कम सुविधा वाले वर्गों को लाभ पहुंचाने के लिए वस्तुओं और सेवाओं के पुनर्वितरण के लिए तर्क देकर नागरिकता के उदार सिद्धांत में योगदान दिया। व्यवहार में, हालांकि, वास्तविक समानता अभी भी उदार नागरिकता में नहीं पाई जाती, हालांकि यह जाति, वर्ग, नस्ल, लिंग आदि के संदर्भ में अंतर के बावजूद औपचारिक कानूनी समानता की गारंटी ज़रूर देती है।

9.4.2 गणतंत्रवादी सिद्धान्त

रिपब्लिकन परंपरा नागरिकों की भागीदारी के माध्यम से नागरिक स्व-शासन पर केंद्रित है। रूसो ने सामाजिक अनुबंध में तर्क दिया कि सामान्य इच्छा के माध्यम से कानूनों का सह–लेखन नागरिकों को स्वतंत्र और कानूनों को वैध बनाता है। इसीलिए, विचार-विमर्श और गणराज्यों में सक्रिय भागीदारी नीति निर्धारण की वकालत करती है क्योंकि यह सुनिश्चित करती है कि व्यक्ति विषय नहीं, बल्कि नागरिक हों। उदारवादियों के विपरीत, जो नागरिकता को कानून द्वारा संरक्षित होने के रूप में देखते हैं, गणतंत्रवादी कानून के निर्माण में भागीदारी चाहते हैं। उदारवादी प्रतिनिधि लोकतंत्र चाहते हैं, जबकि गणतंत्रवादी विचारशील लोकतंत्र (deliberative democracy) को बढ़ावा देते हैं। गणतंत्रवादी आगे तर्क देते हैं कि नागरिकता को सामान्य नागरिक पहचान के रूप में देखा जाना चाहिए जो एक आम सार्वजनिक संस्कृति द्वारा बनाई गई है। नागरिक पहचान के रूप में, नागरिकता नागरिकों को एकजुट कर सकती है, जब तक कि यह पहचान उनकी अन्य पहचानों जैसे

धर्म, जातीयता आदि से अधिक मजबूत हो। गणतंत्रवादी कम्युनिस्टों की आलोचना करते हैं और साथ ही साथ वे स्थानीय पहचानों के प्रति आशंकित हैं, जिन्हें नागरिक लक्ष्यों से ऊपर रखा जा रहा है। हालांकि, आधुनिक राष्ट्र राज्यों के पैमाने और जटिलता को देखते हुए, नागरिक भागीदारी सुनिश्चित करना एक कठिन काम है।

9.4.3 मुक्तिवादी सिद्धांत

1979 में मार्गरेट थैचर के नेतृत्व वाली ब्रिटिश रूढ़िवादी सरकार में मुक्तिवादी नागरिकता का पता लगाया जा सकता है, जिसने सामाजिक अधिकारों के ऊपर बाजार के अधिकारों को अधिक महत्व दिया। यह माना जाता था कि सामाजिक अधिकार (कल्याणकारी नीतियां) राज्य के लिए अपरिहार्य बन रहे थे, उनका तर्क है कि लोग सार्वजनिक पुनर्वितरण के बजाय निजी गतिविधि के माध्यम से अपने मूल्यों और वरीयताओं को आगे बढ़ाने की कोशिश करते हैं। स्वतंत्रतावादियों का कहना है कि नागरिकता व्यक्तियों के बीच मुक्त विकल्प और अनुबंध का उत्पाद है। यह बाज़ार-समाज को अपना आधार और नागरिक जीवन का उपयुक्त मॉडल मानती है। रॉबर्ट नोजिक इस सिद्धांत के प्रमुख प्रतिपादक हैं। उनका मानना है कि व्यक्ति अपने मूल्यों, विश्वासों और वरीयताओं को महसूस करने के लिए निजी गतिविधि, बाजार विनिमय और संघ का सहारा लेते हैं। उदारवादी बाजार अधिकारों को प्राथमिकता देते हैं जिन्हें 'उद्यमशीलता की स्वतंत्रता' के रूप में देखा जाता है। वे अपनी सुरक्षा के साथ-साथ अपनी संपत्ति अर्जित करने की स्वतंत्रता चाहते हैं। तदनुसार, संपत्ति के अधिकार की सुरक्षा के लिए, सुरक्षात्मक संस्थानों की आवश्यकता होती है और राज्य सभी के लिए सबसे कुशल साबित होता है। आलोचकों का कहना है कि मुक्त बाजार आधारित व्यक्तिवाद सामाजिक एकजुटता की पर्याप्त नींव प्रदान नहीं करता है।

9.4.4 समुदायवादी सिद्धांत

समुदायवादियों का तर्क है कि व्यक्ति का अस्तित्व समुदाय से पहले का नहीं है। वे व्यक्तिगत रूप पर बहुत अधिक ध्यान केंद्रित करके व्यक्तियों की सामाजिक प्रकृति की अनदेखी के लिए उदारवादियों की आलोचना करते हैं। इसके अलावा, समुदायवादियों का यह भी तर्क है कि उदारवादियों ने समुदाय के प्रति कर्तव्यों और जिम्मेदारियों को कोई महत्व नहीं दिया है क्योंकि उनका ध्यान एक व्यक्ति के अधिकारों पर है। स्किनर ने कहा कि सार्वजनिक सेवा के माध्यम से व्यक्तिगत स्वतंत्रता को उच्चतम सीमा तक बढ़ाया जाता है और व्यक्तिगत हितों की तलाश में आम हितों को प्राथमिकता दी जाती है। यहाँ, नागरिक की कल्पना किसी ऐसे व्यक्ति के रूप में की जाती है जो राजनीतिक बहस और निर्णय लेने के माध्यम से समाज की भावी दिशा को आकार देने में सक्रिय भूमिका निभाता है। इस सिद्धांत का मुख्य नियम यह है कि एक नागरिक को समुदाय के साथ खुद की पहचान करनी चाहिए, जिसमें से वह खुद एक सदस्य है, और अपने राजनीतिक जीवन में भाग लेता है और नागरिक गुणों की प्राप्ति में योगदान देता है जिसमें दूसरों के लिए सम्मान और सार्वजनिक सेवा का महत्व शामिल है। इसलिए, उदारवादियों के विपरीत, जो व्यक्ति पर ध्यान केंद्रित करते हैं, समुदायवादी नागरिकता सामूहिक अधिकारों को अधिक महत्व देती है। हालांकि, आलोचकों का तर्क है कि यह मॉडल सामान्य परंपराओं वाले छोटे, समरूप समाज के लिए ही उपयुक्त होगा।

यह नागरिकता और बहुसंस्कृतिवाद के बारे में बहस को सामने लाता है। चूँकि आधुनिक समाजों को तेजी से वैश्वीकरण के कारण बहुसांस्कृतिक के रूप में पहचाना जा रहा है, अब व्यक्ति पर केंद्रित नागरिकता के विचार की उदार समझ को चुनौती दी जा रही है। आलोचकों का कहना है कि विशिष्ट संदर्भ जैसे सांस्कृतिक, धार्मिक, जातीय, भाषाई आदि

नागरिकता के निर्धारण कारक होने चाहिए। नागरिकों के समान अधिकारों को समूह–अधिकारों और अल्पसंख्यक समूहों की संस्कृति के साथ विरोधाभास में देखा जाता है। अपनी 1995 की पुस्तक में विल किमलिका, "बहुसांस्कृतिक नागरिकताः अल्पसंख्यक अधिकारों का उदारवादी सिद्धांत" ने तर्क दिया है कि अल्पसंख्यक संस्कृतियों के लिए कुछ प्रकार के 'सामूहिक अधिकार' उदार लोकतांत्रिक सिद्धांतों के अनुरूप हैं। कुछ उदारवादियों को चिंता है कि राष्ट्रीय या जातीय समूहों को रियायतें देने से लोकतंत्र को नुकसान पहुंचता है, क्यूंकि उनके लिए लोकतंत्र में नागरिकता सभी के साथ एक जैसे व्यवहार पर निर्भर करती है। किमलिका का तर्क है कि सामंजस्य के लिए अनुरोध वास्तव में अल्पसंख्यकों की इस इच्छा को दर्शाता है कि वे एकता चाहते हैं। उदाहरण के लिए, अमेरिका में रूढ़िवादी यहूदी सैन्य ड्रेस कोड से छूट चाहते हैं ताकि वे अपने यर्मुलक पहन सकें। वे यह छूट अलग होने के लिए नहीं, परन्तु इसलिए चाहते हैं ताकि वे आर्मी का हिस्सा बनकर बाकी सैनिकों जैसे हो सकें।

9.4.5 मार्क्सवादी सिद्धांत

मार्क्सवादी सिद्धांत के अनुसार, नागरिकता से जुड़े अधिकार वर्ग संघर्ष के उप-उत्पाद हैं। कानून के समक्ष समानता सुनिश्चित करने के लिए आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों की मौजूदगी एक चुनौती है। ये वर्ग आर्थिक रूप से शक्तिशाली वर्गों के प्रभुत्व के कारण अपने नागरिक अधिकारों का प्रयोग करने की स्थिति में नहीं हैं। मार्क्सवादियों का मानना है कि चूंकि राज्य क्रांति के बाद दूर हो जाएगा, इसलिए नागरिकता की अवधारणा ही अस्थायी है। चूंकि कम्युनिस्ट राज्य में कोई राजनीतिक संस्थान नहीं हैं, इसलिए नागरिकता की कोई आवश्यकता नहीं होगी। हालाँकि, व्यवहार में, मतभेद रहे हैं। लेनिन ने सोवियत संविधान में 'राज्य' और 'नागरिक' शब्दों को समाप्त कर दिया, लेकिन स्टालिन ने उन्हें 1936 में बहाल कर दिया। इस संविधान ने व्यक्तियों के लिए कई अधिकार और कर्तव्य सूचीबद्ध किए।

एंथनी गिडेंस ने तर्क दिया कि आधुनिक लोकतंत्र और नागरिकता का विकास 16वीं शताब्दी में शुरू हुआ, जब राज्य ने जनसंख्या की निगरानी और उनके बारे में आँकड़ा संग्रहीत करने के लिए अपनी प्रशासनिक शक्ति को बढ़ाना शुरू कर दिया। यह अकेले सैन्य बल की मदद से नहीं किया जा सकता था और राज्य को सहकारी सामाजिक संबंधों के रूप में नागरिकों से सहयोग की आवश्यकता थी। राज्य ने अधीनस्थ समूहों के लिए राज्य को प्रभावित करने हेतु और अधिक अवसर उत्पन्न किए, जिसे गिडेंस सत्ता के 'दो–तरफा' विस्तार के रूप में संदर्भित करता है। उन्होंने आगे तर्क दिया है कि समकालीन पूंजीवाद 19वीं शताब्दी के पूंजीवाद से अलग है, क्योंकि इसके निर्माण में श्रम आन्दोलनों ने भी योगदान दिया है। इससे कल्याणकारी पूंजीवाद पर ज़ोर बढ़ा है, जो श्रमिकों के नागरिक अधिकारों का ध्यान रखता है। उन्होंने नागरिकता पर मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य को संशोधित किया है और निष्कर्ष निकाला है कि उदारवादी ढांचे के भीतर नागरिकता के अधिकारों को बनाए रखा जा सकता है।

9.4.6 बहुलतावादी सिद्धांत

यह सिद्धांत नागरिकता के विकास को बहुआयामी और जटिल प्रक्रिया के रूप में मानता है और नागरिकता की अवधारणा के विकास में विभिन्न कारकों की महत्वपूर्ण भूमिका पर ज़ोर देता है। नागरिकता का अर्थ है व्यक्ति और समुदाय के बीच *पारस्परिक* संबंध, जैसा कि डेविड हेल्ड का भी मानना था। इस सिद्धांत के अनुसार, "व्यक्ति समुदाय के खिलाफ कुछ अधिकारों का हकदार है", तथा वह समुदाय के प्रति कुछ कर्तव्यों का भी पालन करता है,

और इसलिए, नागरिकता का सार समुदाय के जीवन में निहित है। बहुलवादी सिद्धांत लिंग, जाति, धर्म, संपत्ति, शिक्षा, व्यवसाय या उम्र के आधार पर, लोगों के ख़िलाफ़ सभी प्रकार के *भेदभावों* की समीक्षा पर ज़ोर देता है। समकालीन दुनिया में, विभिन्न प्रकार के सामाजिक भेदभावों के खिलाफ कई सामाजिक आंदोलन शुरू किए गए हैं। इनमें नारीवादी आंदोलन, अश्वेत आंदोलन, धार्मिक सुधार आंदोलन, श्रमिक आंदोलन, बाल अधिकार आंदोलन, दलित आंदोलन, और आदिवासी आंदोलन शामिल हैं। बहुलवादी सिद्धांत यह सिफ़ारिश करता है कि इन सभी आंदोलनों के संदर्भ में नागरिकता की समस्या का विश्लेषण किया जाना चाहिए।

9.4.7 नारीवादी परिप्रेक्ष्य

नारीवादियों का तर्क है कि जीवन के नागरिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों में पुरुषों के वर्चस्व के कारण महिलाएं दूसरी श्रेणी की नागरिक हैं। यह सामान्य रुझानों से स्पष्ट है, जैसे महिलाओं की किसी भी देश में राजनीतिक भागीदारी का स्तर कम है, जबकि पुरुषों की तुलना में उनका राजनीतिक प्रतिनिधित्व भी कम है। उन्होंने सार्वजनिक (राजनीतिक भागीदारी) और निजी (घरेलू) क्षेत्रों के बीच अंतर पर भी सवाल उठाया है, जो महिलाओं के अधिकारों की कीमत पर पुरुष प्रभुत्व को बनाए रखने का एक उपकरण है। इसीलिए, 1970 के दशक में, महिलाओं के आंदोलन का मुख्य नारा था 'व्यक्तिगत ही राजनीतिक है'। जे एस मिल ने सुविदित रूप से कहा था कि, एक निरंकुश परिवार की तुलना में एक सामंतवादी परिवार समान नागरिकता के ज़्यादा अवसर हैं। पुरुषों और महिलाओं के बीच समानता लाने के लिए, उदारवादियों का मानना है कि संवैधानिक सुधार होना चाहिए जिससे पुरुष घरेलू कार्यों में योगदान करेंगे। इसे नागरिक नारीवाद कहा जाता है। समाजवादी नारीवादी मुक्त जन्म नियंत्रण, गर्भपात, महिलाओं के लिए स्वास्थ्य सुविधाओं जैसे क्षेत्रों में विस्तार और घरेलू श्रम की राज्य द्वारा मान्यता चाहती हैं। कट्टरपंथी नारीवादी चाहते हैं कि उन्हें सक्रिय नागरिक बनाने के लिए महिलाओं का सार्वजनिक क्षेत्र में प्रवेश हो।

9.4.8 गांधी के विचार

नागरिकता पर गांधी के विचार सार्वजनिक कल्याण और सक्रिय नागरिकता के विचारों पर केंद्रित थे। गांधी के अनुसार, सभी राज्यों में नागरिकों पर अत्याचार करने के लिए अक्सर शक्तिशाली सत्ता का उपयोग किया जाता है। इसीलिए, उनका मानना था कि किसी राज्य में केंद्रीयकृत शक्ति नहीं होनी चाहिए। धर्म (नैतिक कानून और कर्तव्य), अहिंसा (विचार और कर्म में अहिंसा) और सत्य (सत्य और ईमानदारी) गांधी की नागरिकता के तीन केंद्रीय स्तंभ थे। उन्होंने आगे कहा, क्यूंकि राज्य के पास शक्तिशाली सत्ता होती है, राज्य पर भरोसा नहीं किया जा सकता और वह राज्य के दबाव का विरोध करने के लिए व्यक्ति से अपेक्षा करते हैं। उनका मानना था कि राज्य एक केंद्रित रूप में दबाव, एकरूपता और हिंसा का प्रतिनिधित्व करता है, यही कारण है कि उनका आदर्श राज्य एक अहिंसक राज्य था जो स्व-शासन और आत्मनिर्भर होगा जिसमें अल्पसंख्यक अधिकारों के लिए उचित सम्मान के साथ बहुमत का शासन होगा। उसके साथ साथ, गांधी का मानना था कि स्वतंत्रता अविभाज्य है –जब तक दूसरे गुलाम हैं, तब तक कोई स्वयं भी स्वतंत्र नहीं हो सकता। इसीलिए, उन्होंने दुनिया के "नागरिकों की अवधारणा" की ओर संकेत किया, जहाँ पूरी दुनिया एक व्यक्ति की गतिविधि के लिए कार्यक्षेत्र है। यह उनके शब्दों में निहित है कि, "स्थानीय रूप से सोचें, विश्व स्तर पर कार्य करें"। दुनिया भर के विचारों से खुद को अवगत कराना चाहिए और स्वीकार करना चाहिए कि दुनिया में हर संघर्ष इंसान का अपना संघर्ष है।

बोध प्रश्न 2

नोटः अ) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये गये स्थान का उपयोग करें।

ब) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलायें।

1) नागरिकता पर टी एच मार्शल के विचार क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2) नागरिकता के उदार और गणतंत्रात्मक अवधारणाओं के बीच अंतर स्पष्ट कीजिये।

.....

.....

.....

.....

.....

3) नागरिकता पर नारीवादी दृष्टिकोण को स्पष्ट कीजिये।

.....

.....

.....

.....

.....

9.5 वैश्विक नागरिकता का विचार

वैश्विक नागरिकता के विचार के समर्थकों का मानना है कि सभी लोगों के पास इस दुनिया का नागरिक होने के आधार पर कुछ अधिकार और जिम्मेदारियां हैं। वैश्वीकरण के तहत, नागरिकता के क्षेत्रीय सीमित विचार को प्रवसन, अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक आदान-प्रदान जैसी गतिविधियों द्वारा चुनौती दी जा रही है। हना आरेण्ड्ट के अनुसार, वैश्विक नागरिकता का अर्थ है 'दुनिया के लिए एक नैतिक ज़िम्मेदारी'। अंतर्राष्ट्रीय गैर-सरकारी संगठन ऑक्सफ़ैम के अनुसार, "एक वैश्विक नागरिक वह है जो व्यापक दुनिया और उसमें अपनी जगह के बारे में जानता और समझता है। वे अपने समुदाय में सक्रिय भूमिका निभाते हैं, और दूसरों के साथ मिलकर हमारे ग्रह को अधिक समान, निष्पक्ष और टिकाऊ बनाने के लिए काम करते हैं।" इमैनुअल कांट की विश्व नागरिकता की अवधारणाएं आचरण के लिए व्यक्तिगत जिम्मेदारी को महत्व देती हैं। व्यक्तिगत गतिविधियों की वजह से पर्यावरण के लिए हानिकारक परिणाम हो सकते हैं, और वे दुनिया में कहीं भी लोगों के लिए सहानुभूति की अपेक्षा करती हैं। वे कार्यों के गुण पर जोर देते हैं, जो व्यापक समुदाय को लाभान्वित करते हैं और वे मानते हैं कि अंतर्राष्ट्रीय समाज संयुक्त शासन में भागीदारी

के लिए सीमित अवसर प्रदान करता है क्योंकि विश्व सरकार का विचार अभी भी अस्पष्ट है। वैश्विक नागरिकता के विचार की आलोचना की जा सकती है, क्योंकि यह काफी हद तक दूसरों के प्रति कर्तव्यों और समुदायों के प्रति निष्ठा पर केंद्रित है जो सक्रिय नागरिकता के बजाय राष्ट्र-राज्य से अधिक व्यापक हैं। पारंपरिक उपागम तर्क देते हैं कि राष्ट्र-राज्य ही राजनीतिक समुदाय का प्रमुख रूप है। हालांकि, गैर-पारंपरिक सुरक्षा खतरों जैसे जलवायु परिवर्तन, खाद्य-जल-ऊर्जा सुरक्षा, आतंकवाद आदि के समय में वैश्विक नागरिकता के विचार को पूरी तरह नकारा नहीं जा सकता। ऐसे खतरों से निपटने के लिए, राष्ट्र-राज्यों को एक-दूसरे के साथ सहयोग करना चाहिए और इस सहयोग की समग्र रूपरेखा होनी चाहिए; इन मुद्दों से निपटने में हर व्यक्ति की भूमिका होती है। यह वैश्विक नागरिकता के समान है जहां लोग दूसरों के लिए भी बेहतर भविष्य के बारे में सोचते हैं, जो अपने देश का हिस्सा नहीं हैं, अर्थात दुनिया को सभी लोगों के लिए रहने के लिए बेहतर जगह बनाना है।

बोध प्रश्न 3

नोटः अ) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये गये स्थान का उपयोग करें।

ब) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलायें।

1) वैश्विक नागरिकता से क्या अभिप्राय है?

.....

.....

.....

.....

.....

9.6 सारांश

नागरिकता राज्य और व्यक्ति के बीच का संबंध है। नागरिकता से जुड़े तीन प्रकार के अधिकार हैं – नागरिक, राजनीतिक और सामाजिक अधिकार। नागरिकता के शुरुआती संस्करणों को बहिष्कृत माना गया था क्योंकि दासों, महिलाओं और गैर-संपत्ति वर्ग जैसे समूहों को नागरिक अधिकार नहीं दिए गए थे। यह समय के साथ बदल गया है और देश आज सभी व्यक्तियों के लिए नागरिकता के अधिकारों का विस्तार करने का प्रयास कर रहे हैं। किसी देश की राजनीति में नागरिकों की सक्रिय भागीदारी लोगों की इच्छा के अनुसार राजनीतिक स्थान को अनुकूल बनाती है, जो किसी भी लोकतंत्र की वास्तविक विशेषता है। नागरिकता का समकालीन ज्ञान उदार परंपरा के काफी नज़दीक है, जहां व्यक्तियों को राज्य के ख़िलाफ़ कुछ अधिकार मिले हैं। उसके साथ साथ, गांधीवादी, नारीवादी और वैश्विक जैसे अन्य दृष्टिकोण हैं जो लिंग और राष्ट्रीय बाधाओं को लांघकर नागरिकता की अवधारणा में नई अंतर्दृष्टि प्रदान करने का प्रयास करते हैं।

9.7 संदर्भ

आचार्य, अशोक, (2012), *'वैश्वीकरण की दुनिया में नागरिकता',* नई दिल्लीः पीयरसन

डॉन, ओलिवर और डेरेक, हीटर, (1994), *द फाउंडेशन ऑफ़ सिटिजनशिप,* न्यूयॉर्कः हार्वेस्टर व्हीटशिफ़

किमलिका, डब्ल्यू. (1995) *बहुसांस्कृतिक नागरिकता,* ऑक्सफोर्डः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस

लाल, वी. (2008), गांधी, नागरिकता और अच्छे नागरिक समाज का विचार।

लिंकलैटर, एंड्रयू, (1998), *कॉस्मोपॉलिटन नागरिकता,* नागरिकता अध्ययन, 2: 1, 23-41

मार्शल, टी. एच. (1950), नागरिकता और सामाजिक वर्ग और अन्य निबंध, कैम्ब्रिजः कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।

पोकॉक, जे, 1995 (1992) "आदर्श नागरिकता के बाद से नागरिकता का आदर्श", नागरिकता के सिद्धांत में, आर. बीनर (सं.), अल्बानीः स्टेट यूनिवर्सिटी ऑफ़ न्यूयॉर्क प्रेस, 29-53

यंग, आई. एम., (1989), "पॉलिटी एंड ग्रुप डिफरेंसः ए क्रिटिक ऑफ़ द आइडियल ऑफ़ यूनिवर्सल सिटिजनशिप", नीतिशास्त्र, 99 : 250-274

9.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आपके उत्तर में तीन प्रकार के अधिकारों का उल्लेख होना चाहिए – नागरिक, राजनीतिक और सामाजिक।

2) आपके उत्तर में तीन प्रकार के अधिकारों का उल्लेख होना चाहिए – नागरिक, राजनीतिक और सामाजिक?

बोध प्रश्न 2

1) नागरिक, राजनीतिक और सामाजिक अधिकारों पर प्रकाश डालें और विशिष्ट रूप से यह भी दर्शाइये कि सामाजिक अधिकार नागरिक और राजनीतिक अधिकारों के लिए आधार बनाते हैं?

2) इस बिंदु पर प्रकाश डालिए कि उदारवादी प्रतिनिधि लोकतंत्र की मांग करते हैं लेकिन रिपब्लिकन नागरिकों की सक्रिय भागीदारी के साथ विचारशील लोकतंत्र को बढ़ावा देते हैं?

3) अधिकारों की नारीवादी अवधारणा का तर्क है कि जीवन के सभी क्षेत्रों में पुरुषों के वर्चस्व के कारण महिलाएं दूसरी श्रेणी की नागरिक हैं; वे सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों के बीच अंतर पर भी सवाल उठाते हैं।

बोध प्रश्न 3

1) वैश्विक नागरिकता हमारे समुदाय में व्यक्तियों की सक्रिय भूमिका और हमारे ग्रह को अधिक समान, निष्पक्ष और टिकाऊ बनाने के प्रयासों के लिए तर्क प्रस्तुत करती है।

इकाई 10 नागरिक समाज और राज्य*

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 राज्य के सिद्धान्त

- 10.2.1 पुरातन
- 10.2.2 उदार वैयक्तिक
- 10.2.3 मॉर्क्सवादी

10.3 नागरिक समाज की संकल्पना

10.4 राज्य और नागरिक समाज के बीच सम्बन्ध

10.5 सारांश

10.6 संदर्भ

10.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

10.0 उद्देश्य

इस इकाई में हमने राजनीति शास्त्र के सबसे अधिक मूल और महत्वपूर्ण संकल्पना पर चर्चा की है जोकि राज्य है। इसके साथ ही नागरिक समाज की संकल्पना पर भी प्रकाश डाला गया है। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आपः

- राज्य क्या है, इसे समझ पाएँगे;
- नागरिक समाज क्या है और इसकी सैद्धान्तिक आधारशिला को जान सकेंगे; तथा
- राज्य और नागरिक समाज के बीच क्या सम्बन्ध है, इसकी समीक्षा कर सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

राजनीति विज्ञान में राज्य का विचार केन्द्र में अपना स्थान रखता है। प्रो. गार्नर के अनुसार "राजनीति विज्ञान का आरंभ राज्य से होता है और इसका अन्त भी राज्य पर जाकर रूकता है।" राज्य की संकल्पना और इसके अनुक्रम बंधन समय बीतने के साथ विकसित होते चले गए। राज्य की प्राधिकारिता के विचार से इसका केन्द्र बिन्दु लोगों के कर्त्तव्य में परिवर्तित हो गया। इसी प्रकार से राजनीतिक सिद्धान्त में नागरिक समाज का उद्‌गम हुआ और यह सबसे अधिक वाद-विवाद की एक संकल्पना के रूप में उभर कर हमारे सामने आई है। इसको अस्वीकार नहीं किया जा सकता है कि नागरिक समाज की संकल्पना अटूट रूप से आधुनिक राज्य से जुड़ी हुई है। राज्य और नागरिक समाज के बीच के सम्बन्धों के कारणों ने अनेक मुद्दे खड़े कर दिए गए हैं जैसे कि : राज्य और नागरिक समाज की क्या संकल्पना है? इनके बीच सम्बन्धों की क्या प्रकृति है, अथवा वे किस प्रकार के हैं? इन सब मुद्दों पर हम आगे आने वाले भागों में विस्तार से चर्चा करेंगे।

* डॉ. राज कुमार शर्मा, अकाद्‌मिक असोसिएट, राजनीति विज्ञान संकाय, इग्नू, एवं हमेलता गुना शेखरन, शोध विद्यार्थी, जवाहर लालनेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

10.2 राज्य के सिद्धान्त

राज्य की संकल्पना राजनीतिक सिद्धान्त में प्रमुख स्थान रखती है। इसमें राज्य को परिभाषित किया गया है तथा अनेक संगठन इसको परिभाषित व पुनः परिभाषित कई शताब्दियों से करते आए हैं। हमारे सामने प्राचीन काल से की गई परिभाषाओं के साक्ष्य इतिहास में मौजूद हैं। राज्य की अवधारणा प्लेटो और अरस्तू की नगर राज्य की उनके द्वारा की गई परिभाषा से आरंभ होती है। उन दोनों की दृष्टि और विचार में राज्य प्राकृतिक, आवश्यक और नैतिक संस्थान था। राज्य अथवा नगर राज्य नैतिक आचरण और अच्छे जीवन का सर्वोच्च स्तर माना गया था। समकालीन परिभाषा की उत्पत्ति प्रसिद्ध विद्वान *निक्कोलो मैकियावेल्ली* (Niccolo Machiavelli) से है जो अपने विचार व्यक्त करते हुए इसकी परिभाषा प्रस्तुत करते हैं कि *"शक्ति जो कि मनुष्यों पर प्राधिकृत है।"* इसी परिभाषा को स्वीकार करते हुए मैक्स वेबर द्वारा भी राज्य का स्पष्टीकरण करते हुए इसकी परिभाषा प्रस्तुत की गयी है जो बहुत ही प्रसिद्ध है और स्वीकृत भी है। वेबर राज्य की परिभाषा देते हुए कहते हैं कि *"मानव समुदाय जोकि (सफलतापूर्वक) दिए गए भूभाग या प्रदेश के अन्दर भौतिक बल का विधिवत् प्रयोग करने के एकाधिकार का दावा करता है।"*

10.2.1 पुरातन

प्लेटो ने अपने पूरे शोध कार्यों द्वारा *आदर्श राज्य* (*Ideal State*) की स्थापना की है। उनके अनुसार जिस राज्य पर दार्शनिक शासक शासन करेगा, वह राज्य आदर्श होगा यह राज्य किसी दिव्य संस्थान से कम नहीं होगा, जिसका सब अनुकरण करना चाहेंगे। उन्होंने अपने आदर्श राज्य का वर्णन कालातीत और अपरिवर्तनीय सिद्धान्त पर आधारित बताया है। उन्होंने सुझाव दिया है कि एक आदर्श राज्य की मौजूदगी बुराइयों को समाप्त करके बीमार राजनीति में सुधार कर सकेगी और उसको एक अति सुन्दर रूप प्रदान कर सकेगी। प्लेटो का विश्वास था कि आदर्श राज्य के संचालन के लिए तीन अलग-अलग वर्गों के लोग सम्मिलित होंगे जैसे कि शासक, सेना और लोग या नागरिक। इसलिए आदर्श राज्य की चार प्रमुख योग्यताएँ होंगी – बुद्धिमत्ता, साहस, अनुशासन तथा न्याय। शासकों के पास बुद्धिमत्ता होगी, योद्धाओं के पास साहस होगा, अनुशासन इसलिए होगा क्योंकि समाज में इस बात पर सामान्य अनुबंध होगा कि शासन कौन करेगा, और न्याय इस बात का होगा कि प्रत्येक व्यक्ति वही कार्य करेगा, जो उसके स्वभाव के अनुरूप है। प्लेटो इस बात पर विशेष जोर देते थे कि एक अच्छा राजनीतिक समुदाय समान रूप से लोगों की भलाई के लिए और अपने सभी नागरिकों को समान रूप से उनका कल्याण व हितलाभ करने के लिए निरंतर प्रयास करता रहेगा। इस प्रकार के समाज की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि समुदाय की भावना दृढ़ होगी जिस समुदाय के लोग सदस्य और भागीदार हैं। अपने खर्चों का भार किसी भी अन्य व्यक्ति पर नहीं होगा और सभी तरह के लाभों की हिस्सेदारी में सबको उचित लाभ प्राप्त होगा। दार्शनिक शासक एक अच्छे प्रकार का शासक होगा, क्योंकि वह सत्ता हथियाने या पैसे बनाने की तरफ सबसे कम ध्यान देगा।

अरस्तू ने राज्य को एक *समुदाय* के रूप में परिभाषित किया है, राज्य के अस्तित्व का लक्ष्य एक व्यक्ति की अधिकतम भलाई होना चाहिए। अरस्तू ने राज्य के विकास की तीन अवस्थाओं की पहचान की हैः प्रथम दो मूल प्रवृत्तियाँ हैं जोकि लोगों को एक साथ लाने में उपकरण अथवा उपाय का काम करते थे। प्रजनन मूल प्रवृत्ति है जोकि पुरुषों और महिलाओं को संगठित या एकीकृत करता है और दूसरी प्रवृत्ति है स्वयं संरक्षण। इनमें से प्रथम विषय जो उभर कर आता है, वह है परिवार .... परिवार एक संस्था है जो व्यक्ति की प्रतिदिन की आवश्यकताओं की आपूर्ति के लिए प्रकृति ने स्थापित की है। *परिवार* राज्य की

रचना में *प्रथम* अवस्था है। *द्वितीय* अवस्था थी जब बहुत सारे परिवार मिलकर या संगठित होते हैं और इस संस्था का उद्देश्य दैनिक आवश्यकताओं की आपूर्ति से अधिक कार्य करने का होता है। अतः फिर एक गाँव बनता है जोकि अपने प्राकृतिक स्वरूप में समान अवतरण वाले परिवारों का एक संघ है। उन्होंने *तृतीय* अवस्था को इस तरह से परिभाषित किया है कि जब अनेक गाँव मिलकर एक सम्पूर्ण समुदाय के रूप में संगठित हो जाते हैं; व्यापक रूप से लगभग आत्मनिर्भर होते हैं तब इसके परिणामस्वरूप राज्य की स्थापना हो जाती है या राज्य का उद्‌गम होता है। जीवन की सभी आवश्यकताओं का उत्पादन होने लगता है और अच्छे जीवन जीने के कारणों के लिए अपना अस्तित्व बनाए रखता है। अरस्तू का मानना है कि राज्य एक प्राकृतिक समाज है, मनुष्य के जीवन का अंतिम लक्ष्य है अच्छा जीवन जोकि केवल राज्य में ही प्राप्त हो सकता है। इसलिए, राज्य एक प्राकृतिक समाज है। मनुष्य प्राकृतिक रूप से एक राजनीतिक प्राणी है और वह व्यक्ति जो संयोग से नहीं बल्कि अपने स्वभाव की वजह से राज्य के बिना जीवनयापन करता है, वह या तो बुरा आदमी है या फिर वह मानवता से ऊपर है। अरस्तू के अनुसार राज्य राजनीतिक संघ का उच्चतम स्वरूप है क्योंकि वह सामाजिक विकास के शिखर का प्रतिनिधित्व करता है। राज्य व्यक्ति से पहले भी मौजूद था क्योंकि व्यक्ति को सम्पूर्ण मानवता की प्राप्ति कराने के लिए वह उसे अवसरों की उपलब्धि कराता है। सामाजिक सम्बन्धन व्यक्ति को उनकी मानव जाति की पहचान कराते हैं।

अरस्तू और प्लेटो दोनों के लिए राज्य और इसके कानून किसी परंपरा के परिणाम से अधिक महत्व रखते थे। यह एक प्राकृतिक संस्थान या संस्था थी जो व्यक्ति की आवश्यकताओं और प्रयोजनों को दर्शाती थी क्योंकि मानव की प्रवृत्ति सुसामाजिक और सामाजिक है। उन दोनों के लिए राज्य वास्तविकता का सम्पूर्ण स्वरूप या प्रतिरूप था। वे दोनों ही राज्य और समाज के बीच कोई अन्तर नहीं करते थे, उनके लिए राज्य नैतिक सत्ता थी, जिसका उद्देश्य अच्छा तथा सुखी जीवन बनाए रखना था। *रिपब्लिक* (*Republic*) में सिसरो (*Cicero*) का उद्देश्य प्लेटो के समान ही आदर्श राज्य की संकल्पना का प्रदर्शन करना था। हालाँकि, सिसरो के आदर्श राज्य की संकल्पना राज्य (polis) के समान नहीं थी जैसे कि प्लेटो ने अपने *रिपब्लिक* में स्थापित किया। सिसरो के अनुसार यह एक राष्ट्रमण्डल (commonwealth) है। उसके लिए राष्ट्रमण्डल लोगों का एक संयोजन है जिसके असंख्य सदस्य एक साथ समझौता करते हुए, न्याय का सम्मान करते हुए तथा सामान्य अच्छे कार्यों के लिए परस्पर भागीदारी करते हैं। उन्होंने राष्ट्रमण्डल की रचना के लिए तीन कारणों की पहचान की है। ऐसी संस्था का प्रथम कारण सह है कि मनुष्य एकल, वैरागी या असामाजिक प्राणी नहीं है बल्कि वह ऐसी प्रकृति के साथ पैदा होता है कि यदि उसके पास हर प्रकार की समृद्धि भी है, तो भी वह अपने साथियों से अलग नहीं होना चाहेगा। दूसरा उसका राज्य इस अनुबंध पर आधारित है कि यह सामान्य हित को साझा करेगा। उनकी दृष्टि में यह मनुष्य का प्रासंगिक व्यवहार है जोकि राज्य की स्थापना का जिम्मेदार तत्व है तथा जो लोगों के सामान्य भले व हितों की प्राप्ति के लिए लाभदायक स्रोत था। सामान्य हित को साझा करने की चाह इतनी तीव्र है कि लोग आनंद और आराम के सभी प्रलोभनों का त्याग कर देते हैं। तृतीय समूह के सभी सदस्यों को इस बात पर एक दूसरे से सहमत होना चाहिए कि राष्ट्रमण्डल में कौन से कानून का शासन होगा। सिसरो सरकार के *तीन* प्रकारों का वर्णन करता है, सरकार – राजसी सत्ता, कुलीन तंत्र और लोकतंत्र। परन्तु सरकार के प्रत्येक स्वरूप में भ्रष्टाचार तथा अस्थिरता के कीटाणु है, जो सरकार को गिराने का काम करते हैं। केवल सरकार का मिलाजुला स्वरूप ही स्थायीतत्व और भ्रष्टाचार मुक्त समाज की समुचित गारन्टी देता है। सिसरो सरकार के गणतंत्रीय स्वरूप को प्राथमिकता देते हैं जोकि निगरानी और संतुलन द्वारा स्थायित्व तथा राजनीतिक व्यवस्था का भला करती है।

10.2.2 उदार वैयक्तिक

राज्य के सिद्धान्त पर मध्यकालीन समय में ही *रोमन चर्च* की उक्ति का प्रभाव रहा है। पाँचवीं शताब्दी में रोमन साम्राज्य का पतन हो गया और इसके बाद पश्चिम में एक भी शक्तिशाली धर्म निरपेक्ष सरकार नहीं थी। रोम में शासन कैथोलिक चर्च के पादरियों पर केन्द्रित हो गया था अर्थात् वहाँ पर चर्च का शासन ही प्रमुख था। शक्ति के इस शून्यकाल में, पश्चिम में चर्च का उदय एक प्रमुख शक्ति के तौर पर हुआ। धीरे-धीरे सामाजिक जीवन का रूप बदल कर चर्च के कानूनों के द्वारा शासित धार्मिक जीवन बन कर रह गया था। पन्द्रहवीं शताब्दी में आधुनिक पश्चिम यूरोप की शुरुआत के साथ ही राज्य का विचार फिर से अत्यधिक महत्वपूर्ण बन गया। अनेक विद्वानों द्वारा बहुत सारी परिभाषाएँ दी गई। इनमें सबसे प्रसिद्ध और महत्वपूर्ण सिद्धान्तवादी निक्कोलो मैकियावेल्ली थे। अभी तक सभी राजनीतिक चिन्तक, प्लेटो और अरस्तू से लेकर मध्यकालीन समय के सभी विद्वान, इस केन्द्रीय प्रश्न पर ध्यान लगाए हुए थे कि राज्य का लक्ष्य क्या है। उनका मानना था कि राज्य की शक्ति नैतिक लक्ष्य की प्राप्ति का एक साधन है। परन्तु मैकियावेल्ली ने अपनी एक अलग ही विचारधारा बनाई। उनका मानना था कि राज्य की शक्ति ही राज्य का साध्य है अर्थात् प्रत्येक राज्य को अपनी शक्ति को अधिकतम स्तर तक बढ़ाना चाहिए। इस उद्यम में यदि राज्य असफल हो जाता है तो राज्य में उथल-पुथल की परिस्थितियाँ होंगी। इसके परिणामस्वरूप, वह अपना सारा ध्यान उन साधनों पर लगाते हैं जिनसे शक्ति का अर्जन, धारण तथा विस्तार हो सके। उनके सिद्धान्त राज्य का तर्क (Raison D' Etat) के अनुसार, राज्य को अपने लोगों का भला करने से पहले खुद को संरक्षित कर लेना चाहिए।

मैकियावेल्ली का मानना है कि राज्य मानव संस्था का सबसे उत्तम स्वरूप है। राज्य की एक देवता की तरह से पूजा करनी चाहिए, चाहे व्यक्ति को अपना बलिदान ही क्यों न देना पड़े। राज्य के कुछ प्राथमिक उद्देश्य और जिम्मेदारियाँ हैं, जैसे कि, जीवन की सुरक्षा व संरक्षण, कानून और व्यवस्था को बनाए रखना और अपने लोगों के हितों और उनके लिए कल्याणकारी कार्यों की देखभाल करना है। अतः इन सब कार्यों के निष्पादन के लिए राज्य के पास समुचित साधनों का होना अत्यंत आवश्यक है। मैकियावेल्ली के राज्य का स्वरूप धर्म निरपेक्ष है और उसका चर्च से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह नैतिक रूप से अलग-अलग था तथा स्वयं से बाहर की किसी चीज की तरफ इसका कोई कर्त्तव्य नहीं था। इनका मानना था कि अच्छे कानून, धर्म तथा नागरिकों की सेना एक शक्तिशाली व स्थाई राज्य की स्थापना में मदद करते हैं।

राज्य के विचार पर सिद्धान्तकारियों के बीच मतभेद हैं। हॉब्बस का मानना है कि प्राकृतिक स्थिति की विशेषता यह है कि "इसमें हर व्यक्ति दूसरे के विरुद्ध लड़ाई करता है।" वह हमेशा ही प्रतिस्पर्धा की स्थिति में बना रहता है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को यह प्राकृतिक अधिकार है कि वह सब कुछ कर सकता है, इसमें अन्य व्यक्तियों का किसी प्रकार का लाभ या हित को ध्यान में नहीं रखा जाता है। हॉब्बस के अनुसार, प्राकृतिक स्थिति में अस्तित्व की विशेषताएँ हैं: "अकेला, गरीब, बुरा, पाशविक तथा अल्पकालीन"। प्राकृतिक स्थिति में सिर्फ प्राकृतिक कानून होते हैं, जिनका निर्माण लोग मिल-जुल कर नहीं करते बल्कि ये आत्मरक्षण पर आधारित सिद्धान्त हैं। प्रकृति के प्रथम कानून के बारे में हॉब्बस कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्त्तव्य है कि वह अपनी आशानुरूप शान्ति बनाए रखने के लिए भरसक प्रयास करे, और जब वह इसे प्राप्त नहीं कर सकता है तो इस स्थिति में उसे युद्ध करने के लिए सभी तरीकों का प्रयोग करना चाहिए। उनकी दृष्टि में अस्थिरता की यह स्थिति तब खत्म होगी जब व्यक्ति अपने प्राकृतिक अधिकारों का त्याग कर देगा और अपनी स्व-संप्रभुता को किसी उच्च नागरिक प्राधिकारिता या लेवियाथन (Levaithan) को हस्तांतरित

कर देगा। हॉब्बस के अनुसार, संप्रभु की सत्ता निरंकुश है और उसकी मर्ज़ी ही कानून है। फिर भी इसका अर्थ यह नहीं है कि संप्रभुता के अधिकार में सब कुछ सम्मिलित है, जिन मामलों में संप्रभुता मौन रहती है, उन विषयों में प्रजा सब कुछ करने के लिए मुक्त होती है। सामाजिक संविदा व्यक्ति को प्रकृति की स्थिति को त्यागकर नागरिक समाज में प्रवेश करने की स्वीकृति प्रदान करती है। परन्तु प्राकृतिक स्थिति का खतरा तब वापस आ जाता है जब सरकार का पतन हो जाता है। लेबियथान की शक्ति निर्विरोध है और इसका पतन मुश्किल है परन्तु जब यह प्रजा की सुरक्षा में असमर्थ होता है, तब इसका पतन संभव है।

जान लॉक का कहना है कि प्राकृतिक स्थिति का मतलब सरकार विहीन स्थिति किन्तु आपसी कर्त्तव्य विहीनता नहीं। आत्मरक्षा के अलावा प्रकृति का कानून यह भी सिखाता है कि सभी मानव समान और आजाद हैं तथा एक व्यक्ति दूसरे के जीवन, स्वतंत्रता तथा संपत्ति को हानि नहीं पहुँचाएगा। हॉब्बस के विपरीत, लॉक विश्वास करते हैं कि व्यक्ति प्राकृतिक रूप से सम्पन्न है और ये अधिकार उसको जन्मजात मिले हुए हैं (जीवन, स्वतंत्रता और सम्पत्ति का अधिकार) और प्राकृतिक स्थिति शान्तिपूर्वक भी हो सकती है। व्यक्ति राष्ट्रमण्डल का निर्माण करने के लिए सहमति देते हैं क्योंकि वे एक ऐसी निष्पक्ष शक्ति की स्थापना करना चाहते हैं जो उनके झगड़े सुलझाए और उनकी क्षति का निवारण करें। लॉक विश्वास करते हैं कि जीवन जीने, स्वतंत्रता और सम्पत्ति का अधिकार सब प्राकृतिक अधिकार हैं जो हमें नागरिक समाज की रचना होने से पूर्व ही प्राप्त हैं। प्राकृतिक स्थिति का विचार रूसो के राजनीतिक दर्शन में भी केन्द्रित हैं। उन्होंने हॉब्बस की प्रकृति की स्थिति की संकल्पना की आलोचना की है, जो समाज के विरुद्ध है। प्राकृतिक स्थिति पर रूसो अपना तर्क प्रस्तुत करते हैं कि इसका मतलब समाजीकरण से पूर्व आदिम राज्य है, और इसलिए इसमें गर्व, जलन या दूसरों का डर जैसे सामाजिक भाव नहीं है। रूसो (Rousseau) के दृष्टिकोण में, प्राकृतिक स्थिति नैतिक रूप से तटस्थ और शान्तिपूर्ण स्थिति होती है जिसमें एकाकी व्यक्ति अपनी बुनियादी इच्छाओं के अनुसार कार्य करते हैं और साथ ही आत्मरक्षा की प्राकृतिक इच्छा के आधार पर भी। हालाँकि, आत्मरक्षा की प्रवृत्ति पर दया रूपी दूसरी प्राकृतिक इच्छा का असर पड़ता है। रूसो ने इसको अपने प्रसिद्ध ग्रंथ, *डिस्कोर्स ऑफ दि ओरिजन ऑफ इनइक्वलिटी* (*Discourse on the Origin of Inequality*) (1775), में कहा है कि व्यक्ति प्राकृतिक स्थिति को सभ्य होने के बाद छोड़ देते हैं – इसका मतलब है कि वे एक-दूसरे पर निर्भर हो जाते हैं।

हेगेल के लिए "राज्य का अर्थ पृथ्वी पर ईश्वर का आगमन है।" वे कहते हैं कि यह दिव्य शक्ति का पृथ्वी पर अवतरण है। राज्य *नैतिक जीवन* (*Ethical Life*) का *तीसरा* पल है, यह परिवार और नागरिक समाज को चलाने वाले सिद्धान्तों का संश्लेषण है। विशेषकर वह अपने समय के राष्ट्र राज्य में वह दो अवधारणाओं का मिलन देखते हैं – राज्य की नैतिक समुदाय रूपी संकल्पना जो पुराने समय में भी तथा राज्य की समकालीन संकल्पना जो स्वतंत्रता तथा व्यक्तिवाद का समर्थन करती है। उन्होंने राज्य के विचार को तीन अवस्थाओं में विभाजित किया है – (क) राज्य की तत्काल वास्तविकता, एक स्वयं-निर्भर प्राणी के रूप में या संवैधानिक कानून, (ख) अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अंतर्गत राज्यों का दूसरे राज्यों के साथ सम्बन्ध; (ग) दिमाग या आत्मा का सार्वभौमिक विचार जो विश्व इतिहास की प्रक्रिया में अपने आपको अस्तित्व में लाता है। राज्य पूर्ण रूप से तर्कसंगत था तथा इतिहास के दौरान स्वयं को स्थापित करने के लिए इसके पास मौलिक इच्छाशक्ति थी तथा इस वजह से राज्य अविनाशी है। हेगेल का मानना है कि राज्य अपने आप में ही एक ध्येय है, यह एक दिमाग है जो इतिहास के द्वारा स्वयं को वास्तविकता में लाता है।

10.2.3 मॉर्क्सवादी

राज्य का मॉर्क्सवादी सिद्धान्त राजनीति विज्ञान के सबसे प्रमुख सिद्धान्तों में से एक है। मॉर्क्सवादी विचार उदार राज्य की मूल संकल्पना को चुनौती देता है, वे कहते हैं कि जब तक उदार राज्य का उन्मूलन नहीं होगा तब तक आम आदमी का उद्धार होना कभी भी संभव नहीं होगा। कार्ल मार्क्स और फ्रेडेरिक एजेंलस अपनी पुस्तक *"कम्युनिस्ट मैनीफेस्टो"* (*Communist Manifesto*) में राज्य की परिभाषा देते हुए लिखते हैं कि "राजनीतिक शक्ति, ठीक से कहा जाए तो यह एक संगठित वर्ग की सत्ता है जो दूसरे वर्ग, को दबाती व दमन करती है।" इसके साथ यह भी जोड़ते हैं कि "आधुनिक राज्य की जो कार्यकारी है, वह कुछ नहीं बल्कि एक प्रबंधन समिति है, जो सम्पूर्ण पूँजीपति वर्ग के सामान्य कार्यों का संचालन करती है।" उनके लिए राज्य अन्नत नहीं है, यह अंत में समाप्त हो जाएगा। मॉर्क्स राज्य के सम्बन्ध में बताते हैं कि सरकार किसी भी प्रकार की क्यों न हो यह तो एक बुराई ही है। यह अधिरचना का हिस्सा है, और इसकी मूल शर्त यह है कि यह आर्थिक आधारों पर निर्धारित होता है। यदि इतिहास को ध्यान से देखा जाए, तो उत्पादन की प्रत्येक विधि जब वह बढ़ेगी या उसका संवर्धन होगा इसके अपने ही राजनीतिक संगठन को ही लाभ मिलेगा। इसका विकल्प मॉर्क्स वर्गहीन और राज्यविहीन समाज को बताते हैं, जिसमें वास्तविक लोकतन्त्र और सम्पूर्ण साम्यवाद होगा तथा राजनीतिक राज्य नष्ट हो जाएगा।

तथापि, *नव मॉर्क्सवादी* (*Neo-Marxists*) इस विचार से पूरी तरह से सहमति नहीं हैं कि राज्य एक विशेष वर्ग का साधन है या औजार है। वे तर्क देते हैं कि यह विचार विशेषकर रूस के बोल्शिविक समाज में सच हो सकता है, परन्तु वर्तमान समय के लिए इसे सामान्य रूप से ठीक नहीं माना जा सकता है। वे यह भी तर्क देते हैं कि राज्य का धीरे-धीरे समाप्त होने की मॉर्क्स द्वारा की गई घोषणा अब धूमिल हो चुकी हैं। सर्वहारा वर्ग की तानाशाही के नाम पर अब राज्य और शक्तिशाली हो जाएगा। अपने शोध कार्य, *दि स्टेट इन कैपिटेलिस्ट सोसाइटी : दि अनालिसिस ऑफ दि वेस्टर्न सिस्टम ऑफ पावर* (*The State in Capitalist Society :The Analysis of the Western System of Power*) (1973), में रेल्फ मिलिबैंड (Ralph Miliband) ने कहा है कि राज्य के सम्बन्ध में एक प्रारंभिक समस्या है जिसके समाधान की नितान्त आवश्यकता है, यदि आप इसकी प्रकृति तथा भूमिका पर चर्चा करना चाहते हैं। यह वास्तविक तथ्य है कि "राज्य" नाम की कोई वस्तु नहीं है और इस वजह से इसका आस्तित्व नहीं है। राज्य अपनी अनेक विशिष्ट संस्थाओं के साथ उपस्थित रहता है, जोकि इसको वास्तविक रूप प्रदान करते हैं और आपसी सहयोग करने की वजह से इनको राज्य व्यवस्था के नाम से जाना जाता है। मिलिबैंड कहते हैं कि राज्य की वास्तविक प्रकृति को समझने के लिए, इससे सम्बन्धित सभी संस्थाओं का अध्ययन करना अनिवार्य है जो कि पूँजीपति राज्य का हिस्सा हैं। वे यह भी कहते हैं कि ये संस्थाएँ राज्य के विभिन्न तत्व हैं।

बोध प्रश्न 1

नोटः अ) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये गये स्थान का उपयोग करें।

ब) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलायें।

1) राज्य का मॉर्क्सवादी सिद्धान्त क्या है?

.....

.....

.....

10.3 नागरिक समाज की संकल्पना

नागरिक समाज का विचार राजनीतिक सिद्धान्त में काफी महत्वपूर्ण है। नागरिक समाज का विचार बहुत ही पुराना है, किन्तु यह पिछले कुछ दशकों से बहुत ही महत्वपूर्ण बन कर उभरा है, क्योंकि संपूर्ण विश्व में राजनीतिक स्थितियों का भरपूर विकास हुआ है, विशेषकर पूर्वी यूरोप में भूतपूर्व कम्युनिस्ट देशों के पतन के बाद यह स्थिति सामने आई है। इसके अतिरिक्त, अनेक बार गैर-राज्य अभिकर्त्ताओं, खासतौर पर ग़ैर-सरकारी संगठनों और विभिन्न मुद्दों पर आधारित आन्दोलन सार्वजनिक नीति को आकार देने में महत्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं। "नागरिक समाज" की शब्दावली को सिसरो (सोसाइटीस सिविलिस) के शोध कार्यों के माध्यम से खोज़ा जा सकता है और अन्य प्राचीन ग्रीक दार्शनिकों के द्वारा जाना जा सकता है। यद्यपि पुरातनकाल में नागरिक समाज की राज्य से तुलना की जाती थी। नागरिक समाज के आधुनिक विचार का जन्म अठारहवीं शताब्दी के स्कॉटिस और महाद्वीपीय पुनर्जागरण काल के दौरान हुआ है, जान लॉक, थॉमस पैने से लेकर हेगेल तक के राजनीतिक विद्वानों ने नागरिक समाज की अवधारणा का पोषण किया है। उनके अनुसार, नागरिक समाज वह क्षेत्र है, जो राज्य के समानान्तर है पर इससे अलग है। यह वह स्थान है, जहाँ पर नागरिक अपनी स्वेच्छा से अपने हित और इच्छाओं के अनुरूप मिलते हैं। यह नई सोच बदलती आर्थिक वास्तविकताओं को दर्शाती थी – जैसे कि निजी सम्पत्ति का उदय, बाजार आधारित प्रतिस्पर्धा और पूँजीपति वर्ग। अमेरिका और फ्रांस की क्रान्ति द्वारा दिए गए स्वतंत्रता के विचार ने भी इस पर असर डाला। नागरिक समाज के विचार को उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में आघात लगा और इसका स्तर दूसरे स्थान पर पहुँच गया था क्योंकि राजनीतिक सिद्धान्तकारों का विशेष ध्यान औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप जो राजनीतिक और सामाजिक बदलाव आए, उन पर केन्द्रित हो गया था। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद मॉर्क्सवादी लेखक व सिद्धान्तकार एनटोनियो ग्राम्सी ने अपने कार्यों में इसका इस्तेमाल किया। उनके अनुसार नागरिक समाज स्वतंत्र राजनीतिक गतिविधि का विशेष केन्द्र हैं और अत्याचारी शासन के विरुद्ध महत्वपूर्ण क्षेत्र हैं।

नागरिक समाज की संकल्पना का विस्तार व्यक्ति और उसके अधिकार, दूसरे व्यक्तियों के साथ सम्बन्धों तथा राज्य के साथ रिश्तों के साथ हुआ है। नागरिक समाज की गूँज थॉमस हॉब्बस और जान लॉक के सिद्धान्तों में दिखाई पड़ती है। हॉब्बस का मानना है कि राज्य की सबसे बड़ी भूमिका यह है कि वह अपने नागरिकों को शांति और उनके स्वयं के संरक्षण की गारन्टी प्रदान करता है। नागरिक समाज तब ही अपनी उन्नति कर सकता है जब राज्य शक्तिशाली होगा। हॉब्बस के अनुसार, यह बहुत ही महत्वपूर्ण तर्क है कि व्यक्तियों के बीच अनुबंध के माध्यम से संस्थाओं का निर्माण हुआ और इन संस्थाओं के द्वारा सरकार की स्थापना की गई परन्तु संप्रभु मूल अनुबन्ध का हिस्सा नहीं है।

इनके विचार में, समाज और राज्य को न्यायोचित होना चाहिए क्योंकि ये प्राकृतिक नहीं हैं। प्राकृतिक स्थिति अपने आप में प्राकृतिक है क्योंकि व्यक्ति इसमें तर्क की बजाय अपनी भावनाओं का अनुकरण करते हैं। दूसरी ओर, लॉक का मानना है कि सामाजिक जीवन का सबसे महत्वपूर्ण पहलू व्यक्ति की स्वतंत्रता है। वे ही नागरिक पहले समाज का निर्माण करते हैं और इसके पश्चात् राज्य का, जो व्यक्ति के अधिकारों को सुरक्षा प्रदान करता है। जान लॉक अपनी पुस्तक *"दि सेकेण्ड ट्रिटाईज़ ऑफ गवर्नमेंट"* में कहते हैं कि सम्पत्ति के संरक्षण की जरूरत के कारण ही नागरिक समाज के लोग संगठित होते हैं और सरकार बनाने का कार्य करते हैं। उनका मानना है कि विधिवत् सरकार वहीं होती है जो लोगों की सहमति से संचालित होती है। लॉक ने स्पष्ट किया है कि नागरिक समाज एवं राज्य दोनों अलग-अलग है। उनका तर्क था कि राज्य न्यासधारी शक्ति है जोकि नागरिक समाज के

विश्वास पर आधारित है। वे तर्क प्रस्तुत करते हैं कि यदि राज्य निरंकुशता या ग़ैर-जिम्मेदारियों के कार्यों को आरंभ कर देता है और व्यक्तिगत अधिकारों का हनन करता है, तो नागरिक समाज राज्य द्वारा किए जाने वाले अन्याय को रोकने का प्रयास करना चाहिए। लॉक के इन विचारों का एड्म स्मिथ और एड्म फर्ग्यूसन ने आगे विस्तार किया। फर्ग्यूसन के अनुसार, नागरिक समाज शिष्टाचार की स्थिति है जिसका अर्थ स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि राजनीतिक समाज में नागरिक भाव की गिरावट हुई है, जहाँ पर सफल व्यावसायिक वर्ग प्रशासनिक राज्य का गुलाम बन जाता है। यद्यपि, राज्य इन वर्गों को कानून का शासन मुहैया कराता है, परन्तु यह इनके मूल अधिकारों का हनन भी करता है। स्मिथ अपनी पुस्तक *"दि वेल्थ ऑफ नेशन्स"* में स्पष्ट करते हैं कि नागरिक समाज की अवधारणा का एक महत्वपूर्ण तत्व "आर्थिक व्यक्ति" हैं, जो सक्रियता से मानव जीवन की मूल आवश्यकताओं, सुविधाओं तथा मनोरंजन का पीछा करता है। स्मिथ का मानना है कि नागरिक समाज की मध्यस्थता निजी सम्पत्ति, अनुबंध और श्रम के मुक्त विनियम पर आधारित सामाजिक क्रम द्वारा की जाती है तथा राज्य का यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि वह इस विशेष प्रकार की व्यवस्था को सुरक्षित करे। संक्षेप में कहा जा सकता है कि फर्ग्यूसन और स्मिथ के अनुसार, नागरिक समाज एक विनियामक तथा समाजीकरण की शक्ति है, जो व्यक्ति की अस्थिर प्रकृति पर अपना नियंत्रण रखती है, ताकि वह बाजार व्यवस्था, सम्पत्ति के अधिकार और पूँजीवाद के विकास का बचाव कर सके।

हेगेल ने राज्य और नागरिक समाज के बीच सम्बन्धों को ओर आगे स्पष्ट किया है। उनके अनुसार, नागरिक समाज की रचना करना आधुनिक विश्व की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। हेगेल के दृष्टिकोण में, नागरिक समाज "आवश्यकताओं की व्यवस्था" है, जहाँ पर एक व्यक्ति अपने अभिरुचियों और क्षमताओं के अनुसार अपने हितों को साधने के लिए प्रयास करता है। इनके अनुसार, नागरिक समाज भिन्न तीन चीजों को प्रस्तुत करता है जो अलग-अलग होते हुए भी एक-दूसरे से परस्पर सम्बन्धित हैं: (क) आवश्यकताओं की व्यवस्था; (ख) न्याय का प्रशासन (व्यक्ति और सम्पत्ति की सुरक्षा) तथा (ग) पुलिस और सहयोग की आवश्यकता। व्यक्तिगत लक्ष्य आपसी निर्भरता से जुड़े हुए हैं जिसका शासन औपचारिक नियम द्वारा किया जाता है, जिसे हेगेल बाहरी राज्य या जरूरत और भावात्मक तर्क पर आधारित राज्य कहकर संबोधित करते हैं। हेगेल के अनुसार, राजनीतिक समाज की तुलना में नागरिक समाज को जो नागरिक बनाता है, वह विभिन्न वर्गों और सम्पदाओं में इसका विभाजन, जिनका अपना अलग दृष्टिकोण, रुचि तथा जीने का तरीका है। ये सम्पदाएँ – कृषक वर्ग, व्यापारी और राज्य के कार्यकर्त्ताओं का सार्वभौमिक वर्ग – ये परिवार तथा राज्य के बीच मध्यस्थता करते हैं। हेगेल का मानना है कि राज्य सामाजिक संस्था का सर्वोच्च और अंतिम रूप है। वह राज्य को संश्लेषण (synthesis) कहते हैं, जो कि परिवार का वाद (thesis) है तथा नागरिक समाज का प्रतिपक्ष (anti-thesis)। नागरिक समाज की व्याख्या हेगेल ऐसे करते हैं कि यह मध्यम वर्गीय व्यावसायिक समाज के व्यक्तिवादी तथा सूक्ष्मवादी वातावरण की अभिव्यक्ति है जिसमें रिश्तों को व्यक्तियों की अचेतन इच्छा नहीं बल्कि आर्थिक कानूनों का अनदेखा हाथ चलाता है। यद्यपि, नागरिक समाज राज्य से पहले अस्तित्व में आया था परन्तु अपने अस्तित्व और संरक्षण के लिए यह राज्य पर ही निर्भर है।

हेगेल के विपरीत, कार्ल मॉर्क्स ने नागरिक समाज की संकल्पना की कड़े शब्दों में आलोचना की है। उनके अनुसार राज्य पूँजीपति वर्ग के राजनीतिक एकत्रीकरण का होना है, जैसा कि नागरिक समाज में भी था। मॉर्क्स के अनुसार नागरिक समाज की रचना पूँजीपति समाज ने की है, इसलिए यह पूँजीपति समाज के हितों का प्रतिनिधि करने के अलावा और कुछ नहीं है। इसके साथ उन्होंने यह भी कहा है कि नागरिक समाज एक "आधार" है जहाँ पर उत्पादक शक्तियाँ और सामाजिक सम्बन्ध होते हैं, जबकि राजनीतिक समाज एक

"अधिरचना" (ऊपरी ढाँचा) है। इस संदर्भ में, राज्य "अधिरचना" के तौर पर प्रभावी वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। दूसरी ओर, एंटोनियो ग्राम्सी ने नागरिक समाज को स्वतंत्र राजनीतिक क्रियाकलापों का केन्द्र कहा, जो निरंकुशता के विरुद्ध संघर्ष करने का महत्वपूर्ण क्षेत्र हैं। ग्राम्सी के अनुसार, नागरिक समाज की संकल्पना इस विचार पर आधारित है कि राज्य की शक्तियों का विधिवत् प्रयोग करने के लिए एक संघर्ष करने का स्थान है। वे तर्क देते हैं कि नागरिक समाज न तो एक प्राकृतिक स्थिति है और न ही यह औद्योगिक समाज का एक परिणाम। परन्तु यह "नेतृत्व" करने का कार्य है, जोकि राजनीतिक और सांस्कृतिक दोनों प्रकार का हो सकता है। वह समाज की अधिरचना को दो भागों में विभाजित करते हैं – नागरिक समाज और राजनीतिक समाज। वे तर्क प्रस्तुत करते हैं कि अधिरचना के इन दो तत्वों के माध्यम से प्रभावी समूह नेतृत्व करते हैं। ऐसा करने के लिए वे बल तथा वैचारिक माध्यमों का उपयोग करते हैं। ग्राम्सी स्पष्ट करते हैं कि नागरिक समाज अपने में भौतिक, वैचारिक तथा सांस्कृतिक रिश्तों को समाहित करता है। ग्राम्सी के अनुसार, कोई भी राज्य, चाहे उसमें किसी भी प्रकार की सरकार हो, यदि अपने नागरिकों को नागरिक और राजनीतिक अधिकार नहीं देता है तो उसे आशा करनी चाहिए कि नागरिक और प्रतिनिधित्व की संरचनाओं द्वारा बाहर छोड़े गए लोगों के असंतोष का विस्फोट होगा। उनके विचार में नागरिक समाज महत्वपूर्ण है और कहते है। कि जिन राज्यों में नागरिक समाज नहीं है, वे भेद्य (vulnerable) है उन राज्यों की तुलना में जहाँ नागरिक समाज है। ग्राम्सी मॉर्क्स के इस विचार से सहमत नहीं हैं कि नागरिक समाज का संबंध राज्य के सामाजिक-आर्थिक आधार से है। ग्राम्सी इस बात पर बल देते हैं कि पूँजीवाद के नेतृत्व को जीवित रखने के लिए नागरिक समाज सांस्कृतिक तथा सैद्धान्तिक पूँजी द्वारा अपना योगदान देता है। इसके साथ ही, नागरिक समाज एक कार्यस्थल भी है जहाँ पर नेतृत्व के लिए संघर्ष किया जाता है और इस स्थान पर बाजार और राज्य का विरोध करके समाज अपनी रक्षा कर सकता है। सारांश में यह कह सकते हैं कि अनेक राजनीतिक सिद्धान्तकारों ने नागरिक समाज के सम्बन्ध में अपनी-अपनी परिभाषाएँ प्रस्तुत की हैं। हेगेल के लिए नागरिक समाज राज्य के निर्माण के लिए एक आवश्यक अवस्था है, मार्क्स के लिए नागरिक समाज राज्य की शक्ति का एक स्रोत व साधन है; तथा ग्राम्सी नागरिक समाज को वह स्थान बताते हैं जहाँ पर राज्य प्रभावी वर्गों के साथ मिलकर नेतृत्व का निर्माण करता है।

बोध प्रश्न 2

नोटः अ) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये गये स्थान का उपयोग करें।

ब) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलायें।

1) नागरिक समाज पर हेगेल के विचारों पर चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

10.4 राज्य और नागरिक समाज के बीच सम्बन्ध

नागरिक समाज और राज्य यद्यपि एक-दूसरे से अलग हैं, ये कभी भी एक-दूसरे के साथ सम्बन्धों में पूर्णतः स्वायत्त नहीं रहे हैं। परन्तु ये अपने-अपने उद्देश्यों में बिल्कुल अलग हैं जिनके लिए यह प्रयास करते हैं। एक सीमित राज्य को जरूरी शक्ति से वंचित नहीं किया जा सकता, जिससे वह सुव्यवस्थित समाज की परिस्थितियाँ बनाए रखें जैसे कि कानून व्यवस्था, सुरक्षा और न्याय। दूसरी ओर, एक शक्तिशाली नागरिक समाज शक्तिशाली राज्य के अंतर्गत ही पनप सकता है। एक कमजोर और संघर्षरत राज्य सक्रिय नागरिकों की प्रगति में बाधक होता है। राज्य और नागरिक समाज के लिए डेविड हेल्ड तर्क देते हैं कि यह एक–दूसरे के साथ कार्य करने की आवश्यक शर्त है। प्रायः एक राज्य को समाज के राजनीतिक रूप से संगठित होने के कारण वर्णित करते हैं। समाज मानव जाति की एक संस्था है जिसमें उनकी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। राजनीतिक संस्था की विशेष जरूरत को राज्य पूरा करता है, उन पर अनिवार्य कानून लागू करता है तथा उन्हें सुरक्षा प्रदान करता है। जब एक समाज क सर्वोच्च निर्णय-निर्माण करने वाली प्राधिकरण संस्था के निर्देशों के अंतर्गत, इन कार्यों के निष्पादन की क्षमता रखती है, केवल तब ही यह राज्य बनने की योग्यता रखती है। जबकि यह सत्य है कि राज्य और समाज एक-दूसरे के आयाम हैं, परन्तु फिर भी कुछ फर्क करने की जरूरत है। राज्य की पहचान इसके संगठित, औपचारिक संरचना जिसमें शक्ति के विभिन्न संगठन सम्मिलित होते हैं, विशेषकर विधानपालिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका हैं। दूसरी ओर, नागरिक समाज स्वैच्छिक नागरिकों के खुले संगठन होते हैं जो जनहित के कार्यों को पूरा करने का प्रयास करते हैं। राज्य के पास सर्वोच्च कानूनी सत्ता संप्रभुत्ता है, जबकि नागरिक समाज के पास औपचारिक या कानूनी सत्ता नहीं है। राज्य के पास अपने नागरिकों और राज्य क्षेत्र पर अनिवार्य अधिकार क्षेत्र की शक्ति है, जबकि नागरिक समाज के पास इस तरह का कोई अधिकार नहीं होता है। यह व्यापक रूप से लोगों को उत्साहित या प्रोत्साहित करने की अपनी क्षमता पर निर्भर करता है। राज्य पर कानून व्यवस्था और आंतरिक और बाहरी शक्तियों से अपने नागरिकों की रक्षा करने की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी होती है। नागरिक समाज स्वैच्छिक रूप से नागरिकों के सामान्य हितों की रक्षा करने का कार्य करता है। सबसे अधिक महत्वपूर्ण यह है कि राज्य का अस्तित्व अधिकतर सार्वभौमिक है, किसी प्रकार की राजनीतिक संस्था हर आधुनिक समाजों में पाई जाती है। हालाँकि, नागरिक समाज का उद्‌गम केवल उन्नत और विकसित समाजों में होता है जहाँ नागरिक अपने अधिकारों के प्रति समुचित रूप से सजग होते हैं और अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हुए सामान्य जन हितों के प्रति अपनी चेतना को बनाए रखते हैं।

अनेक भिन्नताओं के बावजूद, इस बात का खण्डन नहीं किया जा सकता है कि एक सक्रिय, विविध नागरिक समाज प्रायः लोकतन्त्र को उन्नत बनाने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह राज्य को अनुशासित कर सकता है, ताकि यह नागरिकों के हितों को गंभीरता से ले और अधिक नागरिक तथा राजनीतिक भागीदारी को पोषित करता है। नागरिक समाज के उद्‌गम ने कुछ लोगों को यह देखने को प्रेरित किया है कि निकट भविष्य में राज्य का अस्तित्व लगभग समाप्त हो जाएगा, राज्य न्यूनतम होगा जबकि शक्तिशाली ग़ैर-सरकारी समूह नए नागरिक व्यवस्था को स्थापित करेंगे। सम्बन्धों की धारणा एक का लाभ, दूसरे की हानि, सिद्धान्त (zero-sum-game) पर आधारित है यानि शक्तिशाली राज्य का मतलब कमजोर नागरिक समाज। नागरिक समाज समूह राज्य की नीतियों को आकार देने में अत्यंत प्रभावकारी हो सकते हैं यदि राज्य के पास नीति निर्माण और लागू करने के लिए सुसंगत शक्ति है। अच्छी ग़ैर-सरकारी सलाह वास्तव में राज्य की शक्ति प्रदान करेगी,

उसकी क्षमता को कम नहीं करेगी। राज्य और नागरिक समाज के बीच सम्बन्ध पारस्परिक हैं। यह समग्र प्रकृति का होना चाहिए, जिसमें एक-दूसरे के हित के लिए काम करें। यह राज्य का उत्तरदायित्व है कि वह एक मंच और एक संरचना उपलब्ध कराए, जिसके अंतर्गत नागरिक समाज अपने कार्यों को कर सके। राज्य और नागरिक समाज को मिलकर साथ चलने की आवश्यकता है। नागरिक समाज की प्रगति राज्य की प्रगति पर निर्भर करती है, और राज्य की कार्यशैली पर सामाजिक रीति रिवाजों और परम्पराओं का प्रभाव पड़ता है। राज्य को नागरिक समाज की बढ़ती जरूरतों का उत्तर देना चाहिए। दूसरी ओर, नागरिक समाज को भी खुला और विविध होने की आवश्यकता है। राज्य और नागरिक समाज की संकल्पना का विकास समान रूप से एक साथ हुआ है। नागरिक समाज के बिना राज्य की कल्पना नहीं की जा सकती और इसी तरह से, कोई भी नागरिक समाज राज्य के बिना वैधता हासिल नहीं कर सकता।

10.5 सारांश

राज्य के नागरिक समाज से सम्बन्ध राजनीतिक समाजशास्त्र में प्रमुख मुद्दा है। इस इकाई में राज्य की तीन सबसे महत्वपूर्ण सैद्धान्तिक स्थितियों को स्पष्ट किया गया है – पुरातन, उदार वैयक्तिक तथा मॉर्क्सवादी। इसी प्रकार से नागरिक समाज के इतिहास को रोमन और ग्रीक दार्शनिकों से लेकर आधुनिक विचारकों, जैसे कि हेगेल, मॉर्क्स इत्यादि तक चिन्हित किया गया है। इस इकाई में यह भी स्पष्ट किया गया है कि राज्य और नागरिक समाज के सम्बन्ध पूरी तरह स्वायत्त नहीं हो सकते हैं। इनके दोनों के अपने उद्देश्यों को निष्पादित करने के तरीके भी भिन्न हैं। नागरिक समाज की प्रगति राज्य की प्रगति पर निर्भर करती है। राज्य की कार्यशैली पर सामाजिक रीति रिवाजों और परम्पराओं का प्रभाव पड़ता है। राज्य को नागरिक समाज की बढ़ती माँगों को नजरअंदाज नहीं करना चाहिए। वहीं दूसरी तरह, नागरिक समाज को खुला और विविध होने की आवश्यकता है।

10.6 संदर्भ

कोहेन, जीन एल. एवं अराटो, एंड्रू (1997), *सिविल सोसाइटी एंड पॉलिटिकल थ्योरी,* यूनाइटेड स्टेट्सः एम आई टी प्रेस

डोरोटा आई. पिट्रज़िक (2001), *सिविल सोसाइटी – कांसेप्चुयल हिस्ट्री फ्रॉम हॉब्बस टू मार्क्स,* मैरी क्यूरी वर्किंग पेपर्स सं. 1, यूनिवर्सिटी ऑफ वेल्स

मुखर्जी, सुब्रत एवं रामा स्वामी, सुशीला (2007) *ए हिस्ट्री ऑफ पोलिटिकल थॉटः प्लेटो टू मार्क्स,* नई दिल्ली : प्रेंटिस हॉल ऑफ इण्डिया

10.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आप अपने उत्तर में निम्नलिखित बिन्दुओं पर प्रकाश डालिएः

- राज्य का मॉर्क्सवादी विचार राज्य की उदार संकल्पना के विरुद्ध है।
- राज्य आर्थिक रूप से प्रभावी वर्ग के हितों को दर्शाता है।
- वर्गहीन, राज्य विहीन समाज की प्राप्ति का उद्देश्य।

बोध प्रश्न 2

1) आप अपने उत्तर में निम्नलिखित बिन्दुओं पर प्रकाश डालिए:

- नागरिक समाज की तीन भिन्न किन्तु अंतःसम्बन्धित विशेषताएँ
- नागरिक समाज को राजनीतिक समाज की बजाय "नागरिक" कहने की वजह
- राज्य और नागरिक समाज के बीच सम्बन्ध।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY